चतुर्थ अध्याय

'विवेच्य नाटकों में सामाजिक संवेदना'

चतुर्थ अध्याय

"विवेच्य नाटकों में सामाजिक संवेदना"

4.1 " समाज " शब्द का अर्थ -

सामाजिक संवेदना को समझने के लिए हमें प्रथम "समाज" और " सामाजिक " शब्दों को जानना जरूरी है । " समाज " और " सामाजिक " शब्दों का अर्थ विभिन्न शब्दकोशों में मिलता है और वह इस प्रकार है --

समाज याने " 1बहुत से लोगों का गिरोह या झुंड, समूह । जैसे सत्संग समाज ।" 2.एक जगह रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का काम करनेवाले लोगों का वर्ग, दल या समूह । समुदाय । 3.किसी विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित की हुई सभा । जैसे आर्य समाज , संगीत समाज ।4.किसी प्रदेश या भूखंड में रहनेवाले लोग जिनमें सांस्कृतिक एकता होती है ।5. किसी संप्रदाय के लोगों का समुदाय ।जैसे – अग्रवाल समाज (सोयाइटी उक्त सभी अर्थों में),6. प्राचीन भारत का समज्या नामक सार्वजानिक उत्सव ।,7.आयोजन, तैयारी ।,उदा.बेगि करहु बन गवन समाजू ।–तुलसी ।"[1] इससे स्पष्ट है कि समाज शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है । श्यामसुन्दरदास द्वारा संपादित " हिंदी शब्द सागर" में" समाज " का अर्थ "1. समूह।,संघ।, गरोह।, दल ।,2. सभा ।,3.हाथी ।, 4.एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करनेवाले वे लोग जो मिलकर अपना एक समूह बना लेते हैं ।, समुदाय ।जैसे शिक्षित समाज, ब्राह्मन समाज।, 5.वह संस्था जो बहुत से लोगों ने एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की हो ।, सभा ।जैसे – संगीत समाज , साहित्य समाज ।, 6.प्राचुर्य ।समुच्चय । ,संग्रह (को) ,7.एक प्रकार का ग्रहयोग।8.मिलना।, एकत्र होना(को)।"[2]

---

1 रामचंद्र वर्मा – मानक हिंदी कोश, पृष्ठ– 234 ।

2 डॉ. श्यामसुंदरदास – हिंदी शब्द सागर ,पृष्ठ– 4968 ।

उपर्युक्त शब्दकोशों में प्राप्त अर्थ के आधार पर समाज का तात्पर्य स्पष्ट है कि समाज विशिष्ट हेतु (जीवन-यापन वगैरह) के कारण संगठित होकर रहनेवाला व्यक्ति समूह है जिसमें एकता, अखंड़ता का तत्त्व होता है । समाज याने वह संस्था जो विशिष्ट उद्देश्य हेतु स्थापित है । किसी भूप्रदेश में रहनेवाले लोग समाज कहलाते हैं जिनमें सांस्कृतिक एकता होती है ।

4.2. "सामाजिक " शब्द का अर्थ

"सामाजिक " शब्द का तात्पर्य देखना भी यहाँ यथोचित है । सामाजिक याने " प्राचीन भारत में " सभा " नामक संस्था से संबंध रखनेवाला।, आज-कल समाज विशेष से संबंध रखनेवाला ।, समाज।, जैसे - सामाजिक व्यवहार, सामाजिक सुधार ।, सामाजिक संबंधों के फलस्वरूप होनेवाला ।, जैसे - सामाजिक रोग ।, पु.1.प्राचनी भारत में, वह जो " सभा" नामक संस्था का सदस्य होता था ।,2. वह जो जीविका निर्वाह या धनोपार्जन के लिए समाज (या समज्या) अर्थात तरह-तरह के खेल-तमाशों की व्यवस्था करता था ।, 3. वे लोग जो उक्त प्रकार के खेल-तमाशे देखने के लिए एकत्र होते थे ।, 4.साहित्यिक क्षेत्र में वह जो काव्य, संगीत आदि का अच्छा मर्मज्ञ हो । रसिक, सहृदय ।"[1] सामाजिक शब्द व्यक्ति और उसके समूह से (समाज) संबंधित सभी आचार, विचार और व्यवहार का सूचक है । डॉ. हरदेव बाहरी सामाजिक शब्द का अर्थ " हिंदी शब्दकोश " में इस प्रकार देते हैं - सामाजिक याने " समाज का (जैसे - सामाजिक सुधार) ,समाज से संबंधित (जैसे सामाजिक रीति-रिवाज)।"[2]

डॉ.श्यामसुंदरदास ने " हिंदी शब्दसागर " में सामाजिक शब्द का अर्थ दिया है -" समाज से संबंध रखनेवाला ।, समाज का जैसे - सामाजिक कुरीतियाँ, सामाजिक झगड़े ,सामाजिक व्यवहार ;, सभा से संबंध रखनेवाला ,सहृदय ,रसज्ञ ।"[3] शब्दकोश में प्राप्त अर्थ के आधार पर " सामाजिक का तात्पर्य स्पष्ट है - समाज से संबंधित व्यवहार, रीति,लड़ाई - झगड़ा, कुरीतियाँ आदि ।अर्थात समाज से जुड़ी हुई, समाज से संबंधित सभी बातें सामाजिक कहलाती हैं ।

1 रामचंद्र वर्मा -मानक हिंदी कोश, पृष्ठ - 3८4 ।

2 डॉ.हरदेव बाहरी - हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ - 822 ।

3 डॉ.श्यामसुंदरदास - हिंदी शब्द सागर ,पृष्ठ - 5074 ।

4.3 सामाजिक संवेदना से तात्पर्य

व्यक्ति जीवन यापन के हेतु एकत्रित अथवा अन्य लोगों के साथ रहता है, जिसे समाज कहा जाता है । उसे उस समाज में रहते हुए जो कुछ अनुभव आ जाता है, वह जो कुछ जान लेता है, अनुभव करता है उस अनुभूति की अभिव्यक्ति सामाजिक संवेदना है । अर्थात व्यक्ति–व्यक्ति के बीच का एक दूसरे के प्रति किया व्यवहार वह चाहे अच्छा हो या बुरा इसकी प्रतिक्रिया ही सामाजिक संवेदना है । मतलब यह कि सामाजिक परिस्थितियों के बीच अनुभूत बातें और उससे प्रकट हुई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति सामाजिक संवेदना है । सामाजिक संवेदना स्नायविक संवेदना न होकर मानवीय संवेदना है । इसका संबंध अनुभूत करने से है, हृदय से है, करूणा से है ।

सामाजिक संवेदना " सामाजिक आदर्श " प्रस्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करती है । उसका स्तर व्यष्टि से समष्टि की ओर विकासशील दृष्टिकोण रखता है । सामाजिक संवेदना एक समुदाय में रहनेवाले लोगों में सभी प्रकार की एकता, अखंड़ता , सार्वजनिक कल्याण और विकास की भावना रखती है, वह समाज में " सामाजिक व्यवस्था " निर्माण करने की दृष्टि रखती है ।

4.4 सामाजिक संवेदना

साहित्यकार अपना साहित्य प्रायः समाजोपयोगी बनाने का प्रयत्न करता है , उसका उद्देश्य भी वहीं होता है । जनहित उसका प्रमुख उद्देश्य रहता है । रचनाकार स्वयं सामाजिक प्राणी है अतः वह प्रत्येक स्तर पर समाज से जुड़ा हुआ है ।समाज में रहते उसे अनेक सुख–दुख की अनुभूति होती है । इन घात–प्रतिघातों का प्रभाव उसके मन पर पड़ता है इसी कारण इसका मन संवेदनशील बन जाता है अतः इसकी प्रतिक्रिया साहित्य के रूप में प्रकट होती है । साहित्यकार की यह वैयक्तिक संवेदना ही सामाजिक संवेदना है क्योंकि जिस तरह समाज में मनुष्य है उसी तरह मनुष्यों से ही समाज जीवित रहता है । "समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक " में शेखर शर्मा ठीक ही लिखते हैं कि " [illegible] "***वैयक्तिक*** संवेदना भी सामाजिक संवेदना से बहुत दूर तक जुड़ी हुई होती है । वस्तुतः सामाजिक संवेदना वहीं है जो वैयक्तिक संवेदना है । व्यक्ति के मन में किसी तत्व विचार अथवा वस्तु के प्रति संवेदना पैदा होती है अतः यह आवश्यक भी है कि उसकी प्रतिक्रिया भी होगी जिसे वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त भी करेगा । इसका प्रभाव समाज पर भी पड़ेगा जो बाद

में जाकर उसकी संवेदना सामाजिक संवेदना का रूप ग्रहण कर लेगी ।"[1]

व्यक्ति या समाज में किसी के भी प्रति और कैसी भी संवेदना क्यों न हो, वह केवल अनुभव के आधार पर ही जन्म लेती और पनपती है । अतः अनुभवों का संवेदना के निर्माण और उसके विकास में बहुत बड़ा योगदान है । चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी ने भी अपने समाज तथा राष्ट्र के प्रति अनुभूत संवेदना को अपने नाटकों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । उन्होंने अपने नाट्य–साहित्य के माध्यम से अपनी एवं समाज की अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है । यहाँ नाटककार की ही संवेदना साहित्य को रूप लेकर सामाजिक में संप्रेषित हुई है ।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी ने समाज के प्रति संवेदनशीलता रखते हुए अनुभव ग्रहण की प्रक्रिया एवं अभिव्यक्ति की विशिष्ट शैली से साहित्य का सृजन किया । अगाध चिंतन एवं चेतना के कारण उनकी सामाजिक दृष्टि आदर्शवाद की ओर झुकी है । वे राष्ट्र में आदर्श समाज का, आदर्श नागरिकों का निर्माण करना चाहते हैं । इसी कारण उनके नाटक के कई पात्र आदर्शवादी हैं । विद्यालंकार जी ने निर्वैयक्तिक एवं तटस्थ रहकर संवेदनशीलता को अभिव्यक्त किया है तभी तो उनकी संवेदना अधिक समृद्ध एवं समाजपरक दिखाई देती है । उनकी संवेदनशीलता में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र महत्त्वपूर्ण होने के कारण उनके संपूर्ण नाटकों में राष्ट्रीय सामाजिक एकरसता दिखाई देती है । उनके नाटकों में सामाजिक तथा राष्ट्रीय संवेदनशीलता में कही भी गत्यावरोध की स्थिति नहीं उत्पन्न हुई है ।

संवेदना एक गतिशील तत्त्व है । उसी के अनुसार विद्यालंकार जी की संवेदना विकासोन्मुख दिशा में अग्रेसर दिखाई देती है । नाटककार चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी ने सामाजिक यथार्थ को संवेदनात्मक पृष्ठभूमि पर पूर्ण सच्चाई और ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त किया है । उन्होंने अपने नाटय साहित्य में समाज में स्थित भ्रष्टाचार, चारित्र्यहीनता, शोषण, खुशामदखोरी आदि प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया है । राजीव जैसे आदर्शवादी पात्रों के माध्यम से उन्होंने भ्रष्टाचारमुक्त आदर्श शासनव्यवस्था, न्यायव्यवस्था दिखाकर सुखद और स्वर्णिम भविष्य की ओर संकेत किया है ।

नाटक सामाजिक कला है और विद्यालंकार जी के नाटक समाजपरक तथा सामाजिक संवेदना

---

1 शेखर शर्मा – समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक, पृष्ठ – 34 ।

से ओतप्रोत हैं । उनके नाटय निर्माण का मूल प्रेरणास्थल जनसमाज ही है अतः उनकी सामाजिक संवेदना समष्टिपरक भावना है जिसमें देश, संस्कृति, धर्म ,सभ्यता और कला के प्रति जागरूक बनने के भाव निहित हैं ।

4.5 सामाजिक व्यवस्था में संवेदना

नाटककार की संवेदना की रचना में प्रमुख भूमिका निभाती है । वही नाटक का प्रमुख आधारतत्व है । उसके अभाव में नाटक की निर्मिति नहीं हो सकती । नाटक में हर स्तर पर संवदेना छायी रहती है । कथाचयन हो या पात्रों की निर्मिति हो अथवा भाषा चयन, इनमें संवेदना प्रमुख है । मतलब संवेदना मानव समाज की रीढ़ होती है । जिसप्रकार रीढ़ के बिना मानव के शरीर का अस्तित्व असंभव होता है उसीप्रकार संवेदनारहित समाज का कोई अस्तित्व नहीं । वह मृतप्राय होता है । अगर किसी समाज की संस्कृति को ज्ञात करना है तो उस समाज की संवेदना को ज्ञात करना आवश्यक है । विद्यालंकार जी के नाटकों को भी समझने के लिए उनकी संवेदना को समझना जरूरी है ।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी संवेदनशील नाटककार हैं । वे देख रहे थे कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में आदर्शहीनता, अनीति, अमानवीयता, अत्याचार तथा अन्याय बढ़ रहा है । पुराने नीति मूल्य लोग भूल रहे हैं । इन बदली हुई स्थिति पर वे गहरी संवेदना प्रकट कर नाटक में पाठकों को पुराने नीतिमूल्यों की याद देते हैं । उनके नाटकों में समाज के अनेक स्तर पर संवेदना प्रकट होती दिखाई देती है । आज के बिगड़े हुए विद्यार्थियों को वे सचेत करना चाहते हैं ।

4.5.1 आश्रम व्यवस्था की अभिव्यंजना

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी अपने " रेवा " नाटक में ब्रह्मचर्याश्रम के महत्त्व को स्पष्ट कर देते हैं । गुरू और शिष्य संबंध तथा विद्यार्थियों के कर्तव्य की वे याद दिलाते हैं । गुरूकुल में आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है । आजकल बिगड़ी हुई शिक्षाव्यवस्था के प्रति गहरी संवेदना प्रकट करते हुए विद्यालंकार जी यह बताना चाहते हैं कि आज गुरू को अवज्ञा शिष्य अपना कर्तव्य समझ रहे हैं । गुरूकुल में सच्चरित्र, कर्मठ और अनन्य देशभक्त नागरिक पैदा होते हैं इसकी याद वे देते हैं । आज आचार्य के बजाय व्यक्तिगत से हीन तथा चरित्रहीन राजनीतिक नेता का अंकुश शिक्षाव्यवस्था पर है ।

आज के विद्यार्थियों के कर्तव्य को वे यहाँ स्पष्ट कर देते हैं । क्योंकि आज युवक अध्ययन के बदले अन्यान्य बातों में ही अपना अधिक समय बरबाद कर देते हैं । यह स्थिति चिंताजनक है । अनुचित मार्ग पर रहे विद्यार्थियों को वे "रेवा" नाटक के आचार्य पुण्ड़रीक के माध्यम से कहना चाहते हैं कि "— तुम्हारी सभी इच्छाओं का आधार तुम्हारा मन है न ? जिस तरह जरा भी तेज वर्षा हो जाने से नदी में बाढ़ आ जाती है, उसका पानी किनारों को तोड़–फोड़कर बाहर निकलने लगता है, उसी तरह कमजोर व्यक्तित्व के मनुष्य का हृदय इच्छाओं की बाढ़ के सामने पराजय स्वीकार कर लेता है , वह असंयमित, पथभ्रष्ट और उच्छृंखल बन जाता है । परंतु जिस मनुष्य का व्यक्तित्व समुद्र के समान विशाल, गम्भीर और "स्वप्रतिष्ठ " है, वह इच्छाओं के प्रबल प्रवाह को अपने भितर उसी तरह पचा जाता है , जिस तरह समुद्र सैंकड़ों , हजारों नदियों को सहज ही में पचा लेता है। ऐसे ही व्यक्ति को शान्ति प्राप्त होती है ।"[1] विद्यालंकार जी विद्यार्थियों को कर्तव्य का पाठ पढ़ाकर उन्हें बलशाली व्यक्तित्व के आदर्श नगारिक बनाना चाहते हैं । क्योंकि वे जानते हैं कि भारतीय समाज मानसिक कमजोरी का शिकार है यह मानसिक बिमारी देश के लिए घातक है क्योंकि इसी कमजोरी का फायदा उठाकर कुछ लोग ,समाज को,युवकों को फुसलाकर तथा बहकाकर गलत राह पर ले चलते हैं । आजकल छात्रावास में विद्यार्थी अध्ययन छोड़कर अनुचित कार्य के प्रति अग्रेसर होते हुए दिखाई देते हैं । इसी संवेदना की प्रतिक्रिया विद्यालंकार जी अपने नाटकों में व्यक्त कर देते हैं ।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी गृहस्थाश्रम व्यवस्था के बारे में " अशोक " नाटक में चर्चा करते हैं। समाज कल्याण के लिए कई बार घर-गृहस्थी को त्याग देना पड़ता है । इसी सामाजिक कर्तव्य की पुकार को वे स्पष्ट कर देते हैं । नायक या परिवार प्रमुख को सामाजिक कल्याग या सुरक्षा हेतु घर–परिवार का त्याग करना पड़ता है, गृहस्थ जीवन की ओर ध्यान देने का अवसर प्राप्त नहीं होता । "अशोक " नाटक में राजनीतिक संघर्ष में व्यस्त सम्राट अशोक के गृहस्थ जीवन की उपेक्षा को स्पष्ट किया है रानी तिषि अशोक का इंतजार करते–करते हमेशा थक जाती है । सम्राट अशोक युद्ध में व्यस्त है एक बार वे आ जाते हैं तब वे पूछते हैं कि " क्या तुम सचमुच साम्राज्ञी बनना नहीं चाहती ? तब तिषि जवाब देती है कि "मुझे तो सिर्फ तुम्हारे हृदय का साम्राज्य ही चाहिए मेरे नाथ ।"[2]

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा , पृष्ठ – 44 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – अशोक, पृष्ठ – 43 ।

इसी नाटक में युवराज सुमन गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर सकता था उसका विवाह शीला के साथ तय हो चुका था मगर राजनीतिक संघर्ष और संकट के कारण वैसा सुयोग नहीं मिल सका । विवाह के पूर्व ही युवराज सुमन का छल–कपट से वध किया जाता है ।

"रेवा " नाटक में राजकुमारी रेवा प्रजा के हित के लिए अपने प्यार को त्याग देती है । वह अपना घर बसाना चाहती थी मगर सामाजिक कर्तव्य के सम्मुख अपने व्यक्तिगत चाह का बलिदान कर देती है ।

आज–कल अपना घर बचाने के वास्ते पूरे समाज को खतरे में डालने को प्रवृत्ति बढ़ रही है ।मगर नेता तथा नागरिकों को यह ध्यान देना जरूरी है कि अपने परिवार की अपेक्षा समाज की चिंता करना जरूरी है । समाज के लिए घर–गृहस्थी छोड़ देना यही सामाजिक आदर्श है ।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में संन्यासाश्रम का विशेष महत्त्व है। संन्यासी के गुण और लक्षणों का विवेचन चंद्रगुप्त जी के " अशोक " नाटक में आया है । संन्यासाश्रम का एक प्रमुख विधान है कि वह लोकसेवा का कार्य करता रहे और किसी पर क्रोध न करे । " अशोक " नाटक में आचार्य उपुगुप्त भी दूत से यही कहते हैं --" लड़ना – भिड़ना भिक्षुओं का काम नहीं है ।xxxx भिक्षु का कर्तव्य है कि वह कभी किसी भी दशा में किसी से नाराज न हो ।xxxxx मेरी राय तो यही है कि आप लोगों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उन्हें सहन करके भी लोकसेवा का कार्य जारी रखना यही आपका एकमात्र कर्तव्य है । xxx सच्चा भिक्षु वही है, जो क्रोध को अपनी असीम शांति से विजय करता है, जो असाधु को अपनी साधुता के बल पर वश में लाता है , जो अत्याचारी का मुकाबला अपनी अखंड़िता दया से करता है ।"[1] विद्यालंकार जी महात्मा गांधी के अहिंसा तत्त्व में विश्वास करते हैं जिससे सामाजिक व्यवस्था सुरक्षित रहती है । वे शांति में विश्वास करते हैं । आज के अशांत भारत के लिए यह संदेश काफी जरूरी है ।

4·5·2 जातिप्रथा, प्रांतीयता और भाषावाद की अन्य भावनाएँ

जातिप्रथा, प्रांतीयता की भावना और आज भाषावाद भारतीय समाज में राष्ट्रीय एकता को

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – अशोक, पृष्ठ – 37 ।

खतरा पहुँचा रहा है । इसी कारण भारतीय समाज अंतर्गत लड़ाई , संघर्ष करता रहता है जो सामाजिक विकास में अटकाव बनता जा रहा है। भारतीय जन मानस की इस प्रवृत्ति को चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी " न्याय की रात " नामक नाटक में स्पष्ट कर देते हैं । इस नाटक के पात्र राजीव के शब्दों में यह बात द्रष्टव्य है " हमारा यह विशाल देश एक बहुत बड़ी मानसिक बीमारी का शिकार है । यह अत्यंत घातक बीमारी है, हमारे देश में गहरी भेदभावना की विद्यमानता । कभी प्रान्त के नाम पर ,कभी धर्म के नाम पर, कभी भाषा के नाम पर और कभी जात-पात के नाम पर हमारे देश के करोड़ो निवासी आसानी से बहका लिए जाते हैं और तब वे आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगते हैं ।"[1]

"न्याय की रात " के राजवी के माध्यम से विद्यालंकार जी अपने मन की बात तथा अपनी संवेदना यहाँ प्रकट करते हैं । वे एकसंघ समाज की जरूरत बताते हैं आज व्यक्ति समाज से अलग, समाज से दूर जा रहा है । समाज की मूल प्रवृत्ति में आज बदल हो गया है यह बात बहुत चिंताजनक है इससे समाज तथा व्यक्ति का काफी नुकसान हो रहा है । उनकी यही संवेदना यहाँ प्रकट हुई है ।

4.6 सामाजिक आदर्श के विभिन्न पहलू

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी ने अपने नाटकों में भारतीय सामाजिक आदर्श के विभिन्न पहलुओं का चित्रण किया है । वे जानते थे कि सामाजिक जीवन में अधिकांश समस्याएँ आदर्शहीनता के कारण तथा आदर्श के अभाव के कारण ही पैदा होती हैं।

इसीलिए आदर्श मूल्यों की स्थापना समाज में जरूरी है । स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में सामाजिक आदर्श के मूल्य खोंखले बन चूके हैं । समाज में स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण सामाजिक मूल्य बिगड़ चूके हैं । इसी संवेदना को ध्यान में रखकर उन्होंने अपने नाटकों में माता-पिता, ,गुरू-शिष्य, भाई-बहन, स्वामी-सेवक आदि रूपों का सामाजिक आदर्श प्रस्तुत किया है ।

4.6.1 माता-पिता के लिए आदर्श

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी अपने " रेवा " नाटक में माता-पिता के आदर्श को प्रस्तुत कर देते हैं । इस नाटक में दिखाया गया है कि कृष्णवर्मा नामक नालायक पुत्र अपने भाई यशोवर्मा के प्रति

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - न्याय की रात, पृष्ठ - 119 ।

बेवफाई करते हए सत्ता हासिल करता है, अपने पिता को कैद करता है तथा जनता पर अत्याचार करता है । इस नालायक बेटे की हत्या स्वयं पिता कर देते हैं तथा कहते हैं "पितृव्य (बड़े आवेश में) पापिष्ट। अधम । जा, तू, सदा के लिए जा । मैं समझ लूँगा कि मेरे संतान हुई ही नहीं । काम्बोज के इतिहास में कोई यह तो न कह सकेगा कि एक भाई ने अपने भाई के साथ वफादारी का व्यवहार नहीं किया ।"[1]

अपना बच्चा है इसलिए उसकेकुकर्म पर परदा डालनेवाले बाप के लिए यह एक आदर्श है कि पापी बेटा हो तो उसे सजा जरूर मिलनी चाहिए । बच्चों के कुकर्म छिपाने से वे और बिगड़ जाते हैं जो समाज के लिए आगे चलकर बहुत खतरनाक बन सकते हैं । सामाजिक सुरक्षा हेतु स्वयं के दुष्ट पुत्र को भी नहीं करनी चाहिए यहीं संवेदना यहाँ प्रकट हुई है ।

" अशोक " नाटक में भी एक ऐसा प्रसंग दिखाया है जो हर माता के लिए एक आदर्श है । एक माता स्वयं भूखी रहकर बच्चों का पेट पालती है मगर उन्हें भीख नहीं माँगने देती । स्वयं असंख्य तकलिफों को उठाकर बच्चों को तकलिफों से बचाती है । अंत में कठिन श्रम और भूखी रह जाने के कारण स्वयं कमजोर होकर सदा के लिए चल बसती है ।उन्होंने मरकर भी अपने आदर्श और सिद्धातों की रक्षा की । डॉ. सीताराम झा " श्याम" अपनी पुस्तक "हिंदी नाटक समाजशास्त्रीय अध्ययन" में लिखते हैं कि " किसी भी देश या समाज की अवनति अथवा दुर्दशा तभी होती है जब वहाँ आदर्शों की उपेक्षा होने लगती है ।"[2] इसीलिए सामाजिक आदर्शों की महत्ता तथा जरूरत समाज के लिए आवश्यक है ।

" अशोक " नाटक में आचार्य दीपवर्धन अपनी बेटी शीला से बहुत प्यार करते हैं । शीला मातृविहीन है पर उसे कभी भी मातृहिन महसूस नहीं होने देते । वे शीला को माँ और पिता दोनों का प्यार अकेले ही देते हैं । उसके भविष्य के बारे में हमेशा चिंतित और सतर्क रहते हैं । पिता के कर्तव्य का वे पूरी तरह पालन करते हैं । बच्ची की खुशी में अपनी खुशी मानते हैं । वे अपने को आदर्श पिता साबित करते हैं ।

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ – 125 ।

2 डॉ. सीताराम झा " श्याम"/ हिंदी नाटक समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ – 157 ।

4.6.2 **भाई–बहन के लिए आदर्श**

आज भाई–बहन का रिश्ता अपनी गरिमा खो चुका है । भाई–भाई, भाई–बहन एक दूसरे के हितचिंतक तो दूर, दुश्मन बन बैठे हैं । एक ही घर में रहते हुए एक–दूसरे को असहयोग दे रहे हैं । मतलब समाज में सामाजिक मूल्यों का –ह्रास हर बात में हो रहा है इसके लिए भाई–बहन भी अपवाद नहीं है ।विद्यालंकार जी "रेवा " नाटक में भाई चोलराज परान्तिक और बहन राजकुमारी इंदिरा को एक–दूसरे के शुभचिंतक भाई–बहन के रूप में दिखाया है ।एक भाई और बहन के कर्तव्य को यहाँ आदर्श रूप में प्रस्थपित किया है । किसी भी बड़े कार्य के लिए घर–परिवार में सहयोग तथा आशीर्वाद की जरूरत होती है । चोलराज परान्तिक को भी अपनी बहन का सहयोग ,आशीर्वाद मिला था । उनके शब्दों में " परान्तिक पिछले दो वर्षों में ही मैंने चोल राज्य को एक विशाल साम्राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया है । यह सब मेरी बहन के आशीर्वाद का फल है राजदूत । वह चलते हुए मुझे आशीर्वाद दे गयी थी " तुम्हें अक्षय यश मिले मेरे भाई "।"[1]

इसी तरह " अशोक" नाटक के भाई–बहन सुमन और चित्रा भाई–बहन के आदर्शवादी चरित्र है तो " न्याय की रात " नाटक की बहन उमा भाई हेमंत की शुभचिंतक है ।हेमंत कुछ बुरा कार्य न करे इसलिए उसे मृत्युशय्या पर दिए पिताजी के वचन कि " कोई भी काम कानून की सीमा से बाहर न करने " की याद दिलाती है । हेमंत को सही रास्ते पर लाने का खूब प्रयत्न करती है तथा उसके कारोबार और जिंदगी के बारे में चिंतित रहती है ।

4.6.3 **स्वामी सेवक के लिए आदर्श**

सामाजिक सम्बधों में स्वामी सेवक संबंध बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । ये संबंध परस्पर के व्यवहारों पर निर्भर हैं । चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी के "अशोक" नाटक का सेनापति चण्डगिरी आदर्श सेवक के रूप में सम्राट अशोक की मरते दम तक सेवा करता है । चण्डगिरी अत्याचारी, क्रूर जरूर है मगर अपने स्वामी के प्रति अत्यंत वफादार है । आदर्श तो केवल अच्छाईयों में है फिर भी वह आदर्श है । "हिंदी नाटक समाजशास्त्रीय अध्ययन" में डॉ. सीताराम झा " श्याम " आदर्श की परिभाषा प्रस्तुत करते हैं " आदर्श को अपनाने का अर्थ है केवल अच्छाईयों की ओर अग्रसर होना । इसलिए जिस समाज में जितने ही आदर्शवादी व्यक्ति होंगे उस समाज में उतनी ही कम बुराइयाँ होंगी ।"[2]

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ– 165 ।

2 डॉ.सीताराम झा"श्याम" –हिंदी नाटक समाजशास्त्रीय अध्ययन,पृष्ठ– 156 ।

अत्याचारी चण्ड़गिरी आदर्श सेवक इसलिए है कि उसमें स्वामी के प्रति प्रेम था, निष्ठा थी । वह अपने स्वामी अशोक के लिए कुछ भी कर सकता था । सम्राट अशोक और चण्ड़गिरी के संवाद यहाँ द्रष्टव्य हैं --

"अशोक-- मुझे इतने खतरे में छोड़कर तुम चले जा सकते हो चण्ड़गिरी ?

चण्ड़गिरी – हरगिज नहीं मेरे मालिक । जहाँ आपका पसीना गिरेगा वहाँ मैं अपना खून बहा दूँगा।"[1]

सचमुच चण्ड़ागिरी ने स्वामी अशोक की सम्राट बनने की इच्छा की खातिर कलिंग युद्ध में प्राण की बलि चढ़ा दी और स्वामी सेवक के सामाजिक सम्बंध को आदर्श बना दिया ।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में आदर्श का अभाव दिखाई देता है । जो मदद करता है उसका भला करना दूर उसे संकट में डालने का षड़यंत्र आज हो रहा है ।इसी संवेदना से तथा समाजनिर्माण कार्य की संवेदना से विद्यालंकार जी अपने नाटय साहित्य में आदर्श की स्थापना करने के लिए प्रेरित हुए ।

"रेवा " नाटक का सेनापति श्रीदेव अपने स्वामी यशोवर्मा का अच्छा मित्र और शुभचिंतक वीर सेनापति है । वह यशोवर्मा का संकट समय में भी साथ देता रहता है तथा चम्पा की लड़ाई में युवराज यशोवर्मा की जगह अपना प्राण दे देता है । यशोवर्मा उसकी मृत्यु के उपरांत प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं " मित्र। भाई । जाओ, अपने यत्न से अर्जित किए हुए स्वर्गलोक को जाओ । आजीवन तुमने मेरा साथ दिया । सदा तुम मुझसे आगे रहे और अंतिम समय में भी तुम मुझसे बाजी ले गए । मेरा बजाय तुमने अपना जीवन दे दिया । जाओ काम्बोज साम्राज्य के सबसे महान वीर अब अनंत विश्राम के लिए जाओ ।"[2] सेनापति श्रीदेव ने अपने प्राणों को त्याग कर अपने स्वामी ,मित्र तथा भाई को बचा लिया और भारतीय सामाजिक सबंधों का आदर्श प्रस्तुत किया है ।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी अपने नाटकों में सामाजिक आदर्श के निर्धारक तत्त्वों का उद्घाटन करते हैं । इन तत्त्वों में सत्य, अहिंसा ,त्याग, नैतिकता,ईमानदारी ,परोपकार तथा सेवा आदि की प्रतिष्ठापना उनके नाटकों में यत्र–तत्र–सर्वत्र दिखाई देती है ।वास्तव में इसी सामाजिक तत्वों के कारण किसी भी समाज के बड़प्पन को पहचाना जा सकता है । इसी कारण समाज को प्रतिष्ठा प्राप्त होती

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – अशोक, पृष्ठ – 68 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ – 131–132 ।

है और जिसे सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है वहीं समाज में सिर ऊँचा उठाकर जी सकता है । मगर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में ये सारे तत्व तथा मूल्य बिखर चूके हैं । इनका गलत अर्थ में प्रयोग हो रहा है । पाखण्डियों ने इन सारे मूल्यों की तथा तत्वों की गरिमा को नष्ट कर दिया है । इसी स्थिति पर गहरी संवेदना विद्यालंकार जी प्रकट करते हैं तथा अपने नाटकों में सत्य, अहिंसा, न्याय, ईमानदारी , सेवा, परोपकार और त्याग के आदर्श की प्रतिष्ठापना करना चाहते हैं ।

4.6.4 अहिंसा ,त्याग और सेवाभाव का उद्‌घाटन

आज सम्पूर्ण विश्व में सभी जगह छल, कपट, हत्या और अपहरण हो रहा है । विद्यालंकार जी का समय भी इसके लिए अपवाद नहीं था । इस सामाजिक परिस्थिति के प्रति गहरी संवेदना प्रकट करते हुए उन्होंने अपने नाटकों में अहिंसा की प्रवृत्ति को प्रकट किया है । "अशोक " नाटक के आचार्य उपगुप्त अहिंसा के प्रचार और प्रसारक हैं । हिंसा अधर्म है, हिंसा करने से किसी का भी भला नहीं होता, हिंसा में अव्यवस्था ,असुरक्षितताविद्यमान है ।अहिंसा से मन को शांति प्राप्त होती है । आचार्य उपगुप्त प्रक्षुब्ध शीला को अहिंसा और सेवाभाव का पाठ पढ़ाते हैं । शीला के भावी पति को हिंसा से मारा जाता है तो वह भी प्रतिहिंसित हो उठती है तब आचार्य उपगुप्त उसे अहिंसा का संदेश देते हैं –" देखो बेटी , देने में जो सुख है वह लेने में नहीं है ।xxxx प्रेम से बढ़कर मीठी और सुखपूर्ण अनुभूति इस दुनिया में कोई दुसरी भी है । तुम प्रतिहिंसा की बात कहती हो शीला । प्रतिहिंसा किससे ? xxxx इस दुर्बल मनुष्य के प्रति प्रतिहिंसा की भावना रखने का अभिप्राय ही क्या है ? तुम अपने ज्ञान को उद्‌बुद्‌ध करने का प्रयत्न करो । तुम्हें यह बात समझ आ जाएगी कि इस दु:खी दुनिया के घावों में मरहमपट्‌टी बन जाने में जो सुख है वह घाव लगाने में नहीं है ।"[1]

आचार्य उपगुप्त के माध्यम से विद्यालंकार जी यह बताना चाहते हैं कि अहिंसा ही धर्म है, सेवा करने की वृत्ति मनुष्य को ऊँचा उठाती है । प्रतिहिंसा और अहंकार कभी अक्षुण्ण नहीं रहते । तात्पर्य यह कि हर एक का हृदय संवेदनशील है इसीलिए प्रतिहिंसा भी अहिंसा में बदली जा सकती है सचमुच शीला की प्रतिहिंसा की भावना अहिंसा में परिवर्तित हो जाती है ।वह प्रतिहिंसा को भूलकर अनाथ, दीन, दु:खी लोगों की सेवा में जुट जाती है । मतलब विद्यालंकार जी व्यक्ति तथा समाज के हृदयपरिवर्तन की भावना पर विश्वास रखते हैं । हिंसा पर प्रतिहिंसा से नहीं बल्कि अहिंसा से विजय

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार –अशोक, पृष्ठ – 86 ।

करने की बात सचमुच गांधी दर्शन की याद दिलाती है । विद्यालंकार जी, धनिक वर्ग, जमीनदार , पाखण्ड़ी नेता, भ्रष्ट अफसरों का भी हृदयपरिवर्तन करना चाहते हैं । इसी भावना को प्रकट करते हुए उन्होंने अपने नाटकों के कुछ पात्रों का हृदयपरिवर्तन दिखाया है । "अशोक " नाटक में सम्राट अशोक का भाभी शीला के आत्मत्याग की भावना के कारण हृदयपरिवर्तन हो जाता है । " न्याय की रात " नाटक के भ्रष्ट सदानंद का कमला के अगाध विश्वास ने हृदयपरिवर्तन कर दिया ।

आज हिंसा और अपहरण की वृत्ति समाज में फैल रही है । इस प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व " "न्याय की रात" का हेमंत करता है । उसने सामाजिक मूल्य में परिवर्तन कर दिया है । हेमंत के शब्दों में नए सामाजिक मूल्य देखिए " मैं शक्ति का पुजारी हूँ । यह दुनिया कमजोरों के लिए नहीं है दया, ममता, करूणा इन सबको मैं कमजोरी मानता हूँ । शक्ति की स्थिति, प्रमाण और निरन्तरता के लिए मैं हिंसा और अपहरण को अपरिहार्य मानता हूँ ।"[1] समाज में इसी प्रकार के बिगड़ते मूल्य प्रतिष्ठा पा रहे हैं इसीकारण हिंसा अपहरण जैसी प्रवृत्ति समाज में बढ़ रही है जिसके कारण सामाजिक सुव्यवस्था खतरे में पड़ गई है । सभी जगह गड़बड़ी हो– हल्ला मच रहा है । हेमंत जैसे लोग इसकी पुष्टि के लिए और नए दर्शनशास्त्र का सहारा लेते हैं जैसे – किसी पर दया–माया मत दिखाओ, भावुक मत बनो । स्वयं हेमंत के शब्दो में " अगर सिकन्दर भावुक होता तो इतना बड़ा साम्राज्य न बना पाता , अगर नैपोलियन दया–माया का शिकार होता तो मास्को तक न पहुँच पाता ।"[2] आज भी गलत लोगों का, उनके विचारों का समर्थन करने की प्रवृत्ति समाज में मौजूद है । इसी प्रवृत्ति के प्रति विद्यालंकार जी गहरी संवेदना प्रकट करते हुए ऐसे लोगों के मन, बुद्धि तथा हृदयपरिवर्तन के लिए अहिंसा का उपाय बताते हैं । तात्पर्य समाज में हृदयपरिवर्तन की जरूरत है ।

"रेवा " नाटक में आचार्य पुण्ड़रिक भी अहिंसा में विश्वास रखते हैं । वे " क्रोध को अक्रोध से जीतो और शत्रु को मित्रता से विजय करों ।"[3] का संदेश देते हैं । वे समाज में मनुष्यत्व, शांति और भातृभाव का पाठ पढ़ाना चाहते हैं । लड़ाई–झगड़े की अपेक्षा शांति और परोपकार का संदेश देते हैं । इसीलिए वे यशोवर्मा को शस्त्रविजय की अपेक्षा शास्त्र विजय यानी सांस्कृतिक विजय पाने की

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – न्याय की रात, पृष्ठ – 90 ।
2 वही, पृष्ठ – 96 ।
3 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ – 36 ।

सलाह देते हैं । वे यशोवर्मा से साम्राज्य विजयी सम्राट बनने की अपेक्षा मानवहृदय विजयी सम्राट बनने की आकांक्षा रखने के लिए कहते हैं ।

विद्यालंकार जी के समय सारा संसार अशांत, युद्धमय और शस्त्रास्त्र से सज्ज था इसी कारण मानव समाज भयभीत हो गया था । समाज में मनुष्यत्व की भावना कम हो गई थी ।ऐसे हालात में शस्त्र के बजाय शास्त्र की विजय, मानवहृदय की विजय की कल्पना परिस्थिति की माँग लगती थी, आज भी लगती है । वे समाज में शांति और सुव्यवस्था के लिए अहिंसा धर्म की जरूरत बताते हैं ।

5.6.5 परोपकार ,नैतिकता और ईमानदारी की प्रतिष्ठापना

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को त्रुटिपूर्ण बताते हैं, उन्हें सब जगह सामाजिक आदर्श का –हास दिखाई देता है । क्योंकि परोपकार के बदले भेद–भाव ,नैतिकता के बदले अनैतिकता तथा ईमानदारी के बदले बेईमानी सारे समाज में फैली हुई थी । "रेवा " नाटक के चोलराज के जरिए विद्यालंकार जी हमें पूछते हैं " हम मनुष्य को मनुष्य के रूप में क्यों नहीं देखते ?"[1] वे इनके माध्यम से कहना चाहते हैं कि हम सभ्यता के उच्चतम शिखरपर पहुँचकर मानव–धर्म को भूल रहे हैं । स्नेह और संवेदना के उच्चतम, मानवीय गुण आज नष्ट हो गए हैं । इसका अच्छा खासा उदाहरण "अशोक " नाटक में देखने को मिलता है । इस नाटक में एक प्रसंग में कलिंक सुद्ध चरमसीमा पर है । सम्राट अशोक की सेना वस्त्र और भोजन की कमी महसूस कर रही थी । इस स्थिति की शिकायत नए सेनापति मौखरी सम्राट को दे देता है । तब अशोक उन्हें सवाल करता है कि सेनापति चण्ड़गिरी इस कमी का क्या इलाज किया करता था ? तो मौखरी उत्तर देता है " वे तुलशी के आसपास के गाँवों को जबरदस्ती लूटकर अपना काम चलाते थे । तो अशोक उन्हें " तुम भी वहीं करो ।"[2] का आदेश देता है । एक सम्राट का (जो जनता का रक्षक है) आदेश कितना अमानवीय और खतरनाक साबित हो सकता है इसकी कल्पना वे लोग ही कर सकते हैं जो लूट गये हैं । इसी नाटक में सम्राट अशोक के आज्ञापत्र का दुरूपयोग करके सेनापति चण्ड़गिरी द्वारा भारी षड़यंत्र से सम्राट सुमन की हत्या उसके विवाह के समय ही क्रूरता से की जाती है । यह अनीति, शैतानी प्रवृत्ति का

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ – 29 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – अशोक, पृष्ठ – 104 ।

द्योतक है । इस सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए मानवीय संवेदना की लहर उत्पन्न करना विद्यालंकार जी आवश्यक समझते हैं । उनके नाटकों में भी इसी भावना का उद्घाटन उन्होंने किया है।

आज कल संपूर्ण समाज धनपतियों, पाखण्ड़ी नेता, भ्रष्ट अधिकारियों की बेईमानी का शिकार हो रहा है ।इस स्थिति को स्पष्ट कर " न्याय की रात " नाटक में विद्यालंकार जी तिकड़मबाज नेता (हेमंत) ,घूसखोर अधिकारी (संदानंद) ,भ्रष्ट व्यापारी (सेठ रामकिशोर) तथा चापलूस लोगों की बेईमानी का चित्र उपस्थित कर उसका अंत नैतिक गुणों से संपन्न **कर्मठ** ईमानदार भारतीय नागरिक राजीव के जरिए कर दिया है । जुगलकिशोर जैसे सुशिक्षित ईमानदार युवक, जो समाज को उचित दिशा प्रदान करना चाहता है, उसे भ्रष्ट समाज का कटु अनुभव मिला है । वह राजीव की मदद करता है । वे हेमंत जैसे भ्रष्ट और बेईमान लोगों को सुधारना चाहते हैं,सही रास्ते पर लाना चाहते हैं राजीव , हेमंत को फटकारते हुए कहता है कि " आप लोगों यही मेहरबानी होंगी कि तरह-तरह के अवैध और गुप-छिपकर किए गए कामों से देश की उन्नति के मार्ग में बाधाएँ न पहुँचाए ।"[1]

हेमंत समाज सेवा का बुरखा पहन कर स्वयं को नेता, समाजसेवक समझने लगता है पर वह पाखण्ड़ी समाजसेवक है । उसने भ्रष्ट अधिकारियों की मदद से काफी बेईमानियाँ की । अनेक शरणार्थी लड़कियों को नौकरी देकर वह परोपकार का दावा करता है पर असल में वह उनकी मजबुरियों का फायदा उठाकर स्वार्थपूर्ति करता है । वह अनेक भ्रष्ट अफसरों को रिश्वत के रूप में लड़कियाँ भेज देता है । यह उनकी बेईमानी और अनैतिकता की चरमसीमा है । विद्यालंकार जी अपने "न्याय की रात " नाटक में यह स्पष्ट करते हैं कि अनैतिक कर्मोद्वारा हेमंत को क्षणिक सफलता भले ही मिल जाय पर जीवन के शेष समय में उसके हाथ विफलता ही लगती है । अर्थात बुराई का अंत कभी अच्छा हो ही नहीं सकता । अनैतिक कर्म से हाथ में विफलता ही आती है ।

"अशोक" नाटक में अशोक अपने पिता बिन्दुसार की मृत्यु का समाचार पाते ही अपने बड़े भाई युवराज सुमन जो भावी सम्राट है, के राज्य पाटलिपुत्र पर आक्रमण करता है ।उसे कैद में कर छल कपट से हत्या करता है तथा स्वयं सम्राट बन जाता है । आज भी एक भाई दूसरे भाई की संपत्ति हड़पने में पीछे नहीं है । ये अनैतिक कर्म सामाजिक व्यवस्था के लिए हानिकारक है । यह

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - न्याय की रात, पृष्ठ - 119 ।

संदेश विद्यालंकार जी के नाटकों में हमें मिलता है । वे यह भी बताना चाहते हैं कि अनीति तथा बेईमानी का अंत बुरा ही होता है । "रेवा " नाटक में एक प्रसंग में उन्होंने दिखाया है कि युवराज कृष्णवर्मा सेनापति श्रीदेव तथा अपने पितृव्य को जेल में डालकर स्वयं राज्याधिकारी बन जाता है । पर आगे चलकर उसे राज्य और प्राण से भी हाथ धोना पड़ता है । विद्यालंकार जी कहना चाहते हैं कि अनीति तथा बेईमानी से आदमी कभी बड़ा नहीं बन सकता । नैतिकता और ईमानदारी से ही व्यक्ति सही मानव होकर समाज के गौरव का पात्र बन जाता है । डॉ. सीताराम झा " श्याम " लिखते हैं कि " नैत्किता से मनुष्य का आत्मविस्तार होता है और ईमानदारी व्यक्ति के चरित्रबल को विकसित करती है ।"[1] तात्पर्य यह कि नैतिकता, ईमानदारी , त्याग, सत्य ,अहिंसा तथा सेवाभाव से ही समाज सभ्य और सुसंस्कृत कहलाता है ।

4.7 **समाज की धार्मिक--सांस्कृतिक संवेदना**

धार्मिक मूलभूत सिद्धांत और आस्था का प्रतिपादन--

सामाजिक शांति और सुव्यवस्था की स्थापना के लिए धर्म की जरूरत होती है । पर आज इसे बिगाड़ने के लिए धर्म का उपयोग किया जा रहा है । इसी संवेदना को प्रकट करते हुए श्रीनिवासदास जी ने सामाजिक सुव्यवस्था के लिए धर्म की अनिवार्यता बताने के उद्देश्य से " प्रह्लाद चरित" नामक नाटक लिखा । विद्यालंकार जी ने भी अपने नाटकों में समाज में शांति और सुव्यवस्था के लिए सामाजिक जीवन में धार्मिक , सांस्कृतिक सिद्धातों को अनिवार्य मानते हुए धर्म को आवश्य्क बताया है । वे अपने नाटकों में गीता के उपदेश तथा वेदों के मंत्रों का उल्लेख करते हुए उनके अनुसार आचरण करने का संदेश देते हैं । "रेवा " नाटक में आचार्य पुण्ड़रीक गीता के अध्याय अपने शिष्यों को पढ़ाते हैं । गीता का उपदेश आचार्य पुण्ड़रीक के शब्दों में देखिए " मैं मानता हूँ कि साधारण दशाओं में लड़ना भिड़ना अच्छी चीज नहीं है ।परन्तु ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है, जब शांत रहना और अत्याचार सहना संसार का निकृस्टतम् पाप बन जाता है और शस्त्र लेकर आततायी का विध्वंस कर देना महान पुण्य का कारण हो जाता है ।"[2]

---

1 डॉ. सीताराम झा "श्याम"- हिंदी नाटक : समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ-172 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - रेवा, पृष्ठ - 45-46 ।

तात्पर्य यह कि सामाजिक व्यवस्था बिगड़ानेवाले अन्यायी अत्याचारी को शासन देना जरूरी है। अन्याय ,अत्याचार के खिलाफ संघर्ष करना बहुत आवश्यक है । बौद्ध धर्म को परमधर्म के रूप में स्वीकार किया है फिर भी सभी परिस्थिति में यह नियम लाभप्रद नहीं होता जैसा कि अन्यायी अत्याचारी ,दुष्ट और शत्रु का सामना करते वक्त यह नियम लाभदायक सिद्ध नहीं होता । फिर भी जहाँ तक संभव हो अहिंसा धर्म का पालन करना जन-समाज का परमआवश्यक कर्तव्य ही है ।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी के " न्याय की रात " नामक नाटक में वेद के मंत्र का उल्लेख आया है । जो मंत्र बचपन में हेमंत के पिताजी ने उन्हें पढ़ाया था उसकी याद भ्रष्ट पाखड़ी हेमंत को राजीव दे देता है " विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रं तन्न आसुव ।"[1] चालबाज ,अनैतिक, बेईमान हेमंत का समाज के बारे में बुरा दृष्टिकोण है । वह समाज में गलत धारणा फैलता है, जैसे – "आज की दुनिया में ईमानदारी का जीवन बिताया ही नहीं जा सकता ।"[2] ईमानदारी में अविश्वास करनेवाले हेमंत को समाज में अभद्र ही सही नजर आता है इसीलिए राजीव भ्रष्ट हेमंत को वेद का उपर्युक्त मंत्र याद दिलाता है जिसका अर्थ है "सृष्टिकर्ता परमात्मा चारों ओर फैली हुई सब बुराईयों को दूर करें और जो कुछ भद्र है वह हमें प्राप्त हो । समाज में गलत धारणा फैलानेवाला हेमंत स्वयं बह चुका है और समाज को भी बहका रहा है । उसे सही रास्ते पर लाने के उद्देश्य से पिताजी के इस मंत्र उच्चारण की याद राजीव उसे देता है ।

"अशोक"और " रेवा " नाटक में विद्यालंकार जी अहिंसा धर्म का समर्थन करते हैं । बौद्ध धर्म के तत्व, सिद्धांतों की चर्चा भी उन्होंने अपने नाटकों में की है । "अशोक " नाटक के आचार्य उपगुप्त बौद्ध धर्म के प्रचारक प्रसारक है । उनके धर्म के आचरण की विशेषता और प्रभाव के कारण आक्रमणकारी, अत्याचारी अशोक भी उपगुप्त से बौद्धधर्म की दीक्षा लेता है और मानवकल्याण के लिए हिंसा को त्यागकर अहिंसा का पुजारी , प्रचारक एवं प्रसारक बन जाता है ।धर्म के सिद्धांतो में तात्पर्य धर्म में इतनी बड़ी ताकत होती है कि आक्रमणकारी, अत्याचारी का हृदय परिवर्तन हो सके । यहाँ सिर्फ मानवधर्म का ही नहीं तो संपूर्ण प्राणीमात्र के संरक्षण धर्म का उल्लेख किया गया है ।

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – न्याय की रात , पृष्ठ – 121 ।

2 वही, पृष्ठ – 59 ।

विद्यालंकार जी अपने नाटकों के माध्यम से यह कहना चाहते हैं कि धर्म एक ऐसा तत्त्व है जिसमें मानव समाज का सदा हित ही निहित है । असल में धर्म वह ताकत है जो समाज को जोड़ने का काम करती है उसे तोड़ने के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है । इन पाखण्डी नेता, समाजसेवकों, के कारण ही देश और समाज का बहुत नुकसान हो रहा है जो धर्म, जात–पाँत, भाषा, सम्प्रदाय का सहारा लेकर समाज को बहका रहें है और उत्पात मचा रहे हैं ताकि अपना पेट भर सके अपने स्वार्थ की पूर्ति हो जाए । " रेवा " नाटक में विद्यालंकार जी विश्वबंधुत्त्व ,शांति, मानवधर्म तथा एकता का संदेश हमें देते हैं । लड़ाई झगड़ा,मारकाट, युद्ध, हत्याकांड़ ने मानवसमाज का अहित ही किया है । युद्ध के प्रति धृणा और नराजी प्रकट करते हुए उन्होंने शांतिदूत आशाद्वीप के निवासियों के मन से युद्धरत व्यक्ति, समाज के प्रति धृणा व्यक्त की है । एक सखी दूसरी से आशाद्वीप के बाहर के लोग तथा समाज के बारे में पूछती है तो वह कहती है " बाहर के लोग कभी हम लोगों के लिए अभिनंदनीय नहीं हो सकते । क्योंकि आचार विचार की दृष्टि से वे हम लोगों की अपेक्षा क्षुद्र है । वे आपस में लड़ते भिड़ते हैं और सुना है कि एक दूसरे की हत्या तक भी कर डालते हैं ।भला ऐसे लोग भी कभी अच्छे हो सकते हैं ।"[1] विद्यालंकार जी यहाँ कहना चाहते हैं कि आततायी कभी भी गौरव के पात्र नहीं बन सकता । चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, उससे समाज धृणा ही करता है क्योंकि मनुष्य समाज अव्यवस्था नहीं सुरक्षा तथा शांति चाहता है । संवेदनशील विद्यालंकार जी मानवीय संवदेना प्रकट करते हुए धर्मयुद्ध केप्रति धृणा और सामाजिक शांति की कामना करते हैं जिससे समाज में सामाजिक सुव्यवस्था निर्माण हो सके ।

4.8 सामाजिक–आर्थिक संवेदना

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी सामाजिक सुव्यवस्था और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए आर्थिक परिपूर्णता को आवश्यक मानते हैं । इसलिए अपने नटक में वे संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था निःपक्ष तथा भ्रष्टाचारमुक्त होने की जरूरत को प्रकट करते हैं । उन्होंने आर्थिक परिस्थितियों और उनसे उत्पन्न अनेक समस्याओं की पैदाईश के जिन कारणों को स्पष्ट किया है उनमें प्रमुख हैं युद्ध ,अंतर्गत कलह, भ्रष्टाचार तथा ऐशों-आराम ।

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ – 55 ।

विद्यालंकार जी ने अपने " अशोक " नाटक में स्पष्ट किया है कि युद्ध के कारण सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति किस प्रकार डॉवाडोल हो जाती है । कई महिनों से चले युद्ध के कारण जीवित और वित्त हानि हो जाती है । सैनिकों के जीवनयापन के लिए राजकीय कोषागार की सामग्री कम पड़ने लगती है तो जनता पर घोर अन्याय और अत्याचार किया जात है । जनता के रक्षक सैनिकों द्वारा ही उसे लूटा जाता है । युद्ध में अपाहिज हुए सैनिकों पर भीख मॉंगने की नौबत आ जाती है । एक पथिक जब उस अपाहिज भिखारी के हाल का पता करता है तब पता चलता है कि वह अपाहिज भिखारी एक सैनिक था । उसे युद्ध में चोट लगने से वह अपाहिज हुआ था । वह युद्धभूमि से घर आया तो तीन महीने तक राज्य की ओर से उसे गुजारे लायक धन मिलता रहा परंतु उसके बाद बंद हो गया अतः लाचार होकर उसके सामने भीख मॉंगने के सिवा कोई चारा ही नहीं बचा । वह अपाहिज भिखारी सैनिक पथिक से कहता है " तुशाली के नगरिक बड़े दयावान हैं वे गरीब की, अपाहिज की, अनाथ की पुकार अवश्य सुनते हैं । मगर अब तो यहॉं जिंदा आदमी ही कितने बचे हैं ? और जो बचे हैं उनमें कितने ऐसे हैं जिनमें एक सिक्का देने की सामर्थ्य बाकी हो ।"[1]

तात्पर्य यह कि युद्ध ने सारी सामाजिक आर्थिक स्थिति बिगाड़ दी है भारतीय सामजिकता के बारे में शेखर शर्मा –"समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक " में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं-" अनिश्चित आर्थिक वातावरण , युद्ध की आशंका तथा जीवन के दुर्निवार संघर्ष के कारण वह और भी धुरीहीन व्यक्तिवादी, निराशावादी, भाग्यवादी, निष्क्रिय और आत्मलीन ,आत्मभीरू बनता चला गया है एवं अब भी वह इस स्थिति से बाहर नहीं आ सका है ।"[2] ठीक इसी संवेदना को विद्यालंकार जी अपने नाटक में प्रकट करते हैं ।

"रेवा " नाटक में विद्यालंकार जी युवकों को अपने पैरों पर खड़े होने का संदेश देते हैं । इस नाटक का युवक मकरंद व्यवसाय करने हेतु विदेश जाना चाहता है मगर अपने पिताजी से किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता लेना नहीं चाहता । वह अपने पैरों के बलबुते पर खड़ा रहना चाहता है । इन्दिरा और मकरंद के बीच के वार्तालाप द्वारा यह स्पष्ट होता हे ।" इन्दिरा : अपने पिताजी तुमने कोई आर्थिक सहायता ली है ? मकरंद : नहीं राजकुमारी मैं बिना किसी प्रकार की आर्थिक सहायता के अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता हूँ । पिताजी से मैं किसी प्रकार की आर्थिक सहायता

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – अशोक, पृष्ठ – 97 ।

2 शेखर शर्मा – समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक, पृष्ठ – 31 ।

नहीं लूँगा ।"[1]

विद्यालंकार जी अपने नाटकों में यह भी ध्वनित करना चाहते हैं कि धन का संग्रह करना जितना कठिन है, उसे बहा देना उतना ही आसान है। तात्पर्य यह कि धन का उचित उपयोग करने की सलाह वे देते हैं । सचमुच आर्थिक स्थिति को सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिए खर्च को सीमित करना अनिवार्य है । न्याय की रात " में अर्थ व्यय की प्रचुरता के कारण हेमंत के आचार-विचार और व्यवहार में फर्क पड़ता है । उसकी बहन उमा के शब्दों में " पिछले कितने ही बरसों से भाई साहब इम्पीरियल होटल में एक सबसे महँगा सैट लेकर रहते थे ।नये से नये मॉड़ल की शानदार बड़ी कारें दिल्ली में सबसे पहले भाई साहब के पास ही देखने में आती थीं । पर न जाने किस कारण भाई साहब ने इम्पीरियल होटल छोड़कर गुजारे लायक यह छोटा-सा बंगला ले लिया । बड़ी कार छोड़कर "हिन्दोस्तान - 14 " पर सफर करने लगे और कीमती सूट छोड़कर चूड़ीदार पाजामा और बन्द गले का कोट पहनने लगे ।[2]

हेमंत के इस परिवर्तन का कारण अर्थ की कमी हो सकती है या उसका पाखण्डीपन । पर धन का अपव्यय और ऐशों-आराम की आदत आदमी को बुरे कर्म की ओर प्रवृत्त करती है । हेमंत भी इसी कारण अनेक बेईमानियाँ करता है , भ्रष्टाचार करता है । वह और सदानंद मिलकर सरकारी पैसों को लूटते रहते हैं । पैसों की ताकत से वे कुछ भी करते हैं । यहाँ तक कि न्याय व्यवस्था में भी गड़बड़ी करना चाहते हैं। वे अपनी जालसाज तम्बाकु कंपनी की सारी बेईमानियाँ भोलीभाली शरणार्थी कमला नामक लड़की के उपर डालना चाहते हैं । कमला को फँसाकर उस जालसाज कंपनी का सेक्रेटरी पद दे देते हैं । उसके बदले उसे काफी पैसे उसके न चाहते हुए भी दे देते हैं। असल में यह पैसा हिन्दुस्तान के गरीब किसानों की मेहनत का पैसा है जिसका उपयोग हेमंत और सदानंद अपनी बेईमानियाँ छिपाने के लिए करते हैं। प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू जी का भाषण विद्यालंकार जी ने अपने नाटक में पेश किया है जो उन्होंने सरकारी खजाने के बारे में किया था । जैसे -"सरकारी पैसा हिन्दोस्तान के गरीब किसानों " की जेब का पैसा है । भारत के किसान पसीना बहाकर जो कमाते हैं, वही टैक्स वगैरह के रूप में हमारे पास आता है और हम उसे खर्च करते हैं। हम सैकडों करोड़ो रूपए इसलिए खर्च कर रहे हैं कि हम उस गरीब किसान को लाभ पहुँचाना

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - रेवा, पृष्ठ - 25 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - न्याय की रात , पृष्ठ - 33 ।

चाहते हैं। अपना पेट काटकर और हजार बातों में कमी करके हम यह पैसा खर्च कर रहे हैं । इसलिए कि बाद में लाभ हो लेकिन यह एक गरीब देश के गरीब निवासियों का पैसा है । इस पैसे को खर्च करते हुए हमें यह ख्याल हमेशा रखना चाहिए कि इस रकम का एक पैसा भी जाया न हो । हर एक शख्स को जो सरकारी मुलाजिमा है सोचना चाहिए कि आखिर यह पैसा गरीबों की जेब से आता है ।"[1]

विद्यालंकार जी भारतीय समाज के प्रति संवेदना के साथ कहना चाहते हैं कि हर सरकारी अफसर तथा नेता को यह ध्यान रहे कि उनके पास की संपत्ति को संपूर्ण राष्ट्र की धरोहर समझकर उस्का उपयोग जनकल्याण और राष्ट्र के हित के लिए करे न कि स्वयं के लिए । किन्तु आज हर एक सरकारी अफसर, पाखण्ड़ी नेता गरीब भारतीय किसानों के पैसों का गबन करके उसका उपयोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए करता है और गरीब जनता पर उनके ही पैसों द्वारा अन्याय, अत्याचार करते हैं ।इस सामाजिक स्थिति के प्रति गहरी संवेदना विद्यालंकार जी प्रकट करते हैं ।

मनुष्य अनावश्यक खर्च पर काबू पा जाय तो कभी भी अर्थ की कमी महसूस नहीं होंगी और अर्थाभाव के कारण जो रिश्वत, शोषण तथा भ्रष्टाचार जैसी प्रवृत्तियाँ समाज में बढ़ रही हैं वे कम हो जाएँगी । मतलब यह कि ऐशों–आराम तथा शराबखोरी अर्थाभाव का मूल कारण है । विद्यालंकार जी पूँजीपति लोगों की पोल खेलते हुए उनकी आलोचना करते हैं ।"न्याय की रात " के सेठ रामकिशोर जैसे पूँजीपति धनलोलूप हैं ।वे हमेशा बुराई का साथ देकर गुण्डे ,मवाली ,नेताओं को आर्थिक मदद करते हैं और अपार धनसंचय करते हैं । डॉ. सीताराम झा "श्याम " कहते हैं कि " कोई भी व्यक्ति जब अपार धनसंचय करा लेता है,तो समझना चाहिए कि उसने या तो बेईमानी की है अथवा अत्याचार किया है ।"[2]

कमला जैसी शरणार्थी पढ़ी लिखी लड़कियों के साथ पूँजीवादी सभ्यता के लोग सब से अधिक खिलवाड़ कर रहे हैं। विद्यालंकार जी इस स्थिति के प्रति गहरी संवेदना प्रकट करते हुए ईमानदार और सुसंस्कृत पात्र राजीव तथा जुगलकिशोर के जरिए पूँजीवाद का पर्दाफाश कर देते हैं ।इन सारी परिस्थितियों को बदलने हेतु वे "न्याय की रात " की भूमिका में लिखते हैं कि " इन परिस्थितियों में मेरी राय से और भी अधिक आवश्यक है कि सरकारी मशीनरी के कल पुर्जे पूरीतरह निर्दोष हो । जिस देश को कोई बड़ा काम करना हो अथवा जब कोई देश विषम परिस्थितियों में से गुजर रहा हो तो

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – न्याय की रात, पृष्ठ – 101 ।

2 डॉ.सीताराम झा –श्याम" हिंदी नाटक समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ – 293 ।

उसका शासनतंत्र अत्यंत मजबूत होना चाहिए ।"[1] उन्नत समाज निर्माण तथा आर्थिक समृद्धि केलिए जरूरी है कि त्याग,श्रम, सेवा, ईमानदारी , अहिंसा ,परोपकार और सादगी को उचित महत्त्व मिले और अर्थार्जन का प्रमुख उद्देश्य स्वार्थ के बजाय बहुजन हिताय हो ।

4.9 " बेकारी " की समस्या का विवेचन

विद्यालंकार जी ने " न्याय की रात " नाटक में बेकारी की समस्या पर प्रकाश डाल है । आधुनिक काल में योग्यता धारक ,सुशिक्षित , स्वाभिमानी और ईमानदार के लिए नौकरी मिलना एक समस्या बन गई है । जुगलकिशोर ऐसे ही वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । वह यु.पी.एस.सी. परीक्षा पास है । ईमानदारी है और अपने साथ–साथ देश और समाज का भी कल्याण देखना चाहता है । वह अपनी योग्यता के बल पर नौकरी प्राप्त करना चाहता है परंतु वर्तमान समाज की राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था इतनी दूषित है कि उसे यु.पी.एस.सी. द्वारा चुना जाने और उसके नियुक्ति का पत्र दिया जाने के बावजूद भी उसे कोई काम नहीं देना चाहता । सदानंद उसकी जगह पर अपने रिश्तेदार के लड़के विजय राधव को नियुक्त करना चाहता है । जुगलकिशोर यही बात कमला से कहता है –" यहाँ देश की चिंता किसी को नहीं है ।सब को अपनी अपनी चिंता है । कही दोस्ती चलती है, कही धड़ेबन्दी चलती है और कही प्रांतीयता की सड़ीगली भावना चलती है। मैंने सुना है कि यहाँ काम को और योग्यता को कोई नहीं देखता।यहाँ तो बस यहीं देखा जाता है कि किसकी पहुँच कहाँ तक है ।"[2] मतलब यह कि सरकारी अफसर अपने स्वार्थ के हेतु सुयोग्य को काम पर लेना नहीं चहते । जुगलकिशोर अपने पिताजी के मित्र श्री. व्यंकटाचारी जी से मिलता है जो बहुत बड़े सरकारी अफ्सर हैं तब कहीं उसे अपने लिए पोस्ट मिल जाती है । सदानंद इस संदर्भ में जुगलकिशोर से पूछता है कि तुमने सबसे पहले यह क्यो नहीं बताया कि तुम श्री. व्यंकटाचारी के आदमी हो ? तो जुगलकिशोर बड़े व्यंग्यभरे शब्दों में कहता है कि मुझे कहाँ मालूम था कि मेरे पिताजी के किन–किन मित्रों के नाम में "खुल जा सिमसिम" वाली शक्ति है ।तो सदानंद जवाब में उसे बड़ा विचित्र सिद्धांत सुनाता है । आज की दुनिया में इसी बात का ज्ञान तो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । आगे वह कहता है " रामनाम की महिमा सुनी है ने तुमने ? इस कलिकाल में वह शक्ति परमात्मा के बनाए कुछ बन्दो के नामों में आ गई है । फर्क इतना ही है कि रामनाम की महिमा युगों तक चली , इन बन्दो की ताकत सिर्फ तक

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – न्याय की रात, पृष्ठ – 7 ।

2 वही, पृष्ठ – 182 ।

रहती है जब तक ये कुर्सी पर रहते हैं । आज इस बात का ज्ञान रखना जरूरी है कि किस मौके पर कौन–सा नाम अमोध सिद्ध होता है ।"[1] सदानंद के इस कथन से विद्यालंकार जी ने समाज सही चित्र खींचा है । सदानंद दुषित समाज की आर्थिक–राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिनिधि है तो जुगलकिशोर ईमानदार, सुशिक्षित , सभ्य और बेकार युवकों का प्रतिनिधित्व करता है ।

आजकल नौकरी योग्यता के बल पर नहीं सिफारिश के बल पर मिलती है और सिफारिश के बल पर नौकरी पानेवालों से ही समाज का अधिक अनिष्ट होता है । क्योंकि वे भी आगे चलकर रिश्वतखोरी , अहंमन्यता, असभ्यता , भाई–भतीजावाद आदि को बनाये रखने में उन लोगों का हाथ बटाते हैं । चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी अपने नाटकों में यह भी व्याख्यायित करते हैं कि अस्तव्यस्त, डॉवाडोल तथा कमजोर आर्थिक व्यवस्था के कारण समाज में चोरी, डकैती, निर्दयता तथा भूखमरी आदि समस्याएँ पैदा होती हैं ।" रेवा " नाटक में एक दृश्य दिखाया है जहाँ मन्दिर में एक चोर चोरी करता है । तात्पर्य यह कि नाटककार की यहाँ यह संवेदना प्रकट होती है कि समाज को रचनात्मक कार्य की ओर प्रेरित होना जरूरी है, श्रम के म्हत्त्व को जानना है, हस्तकला , लघुउद्योग आदि का विकास कर समाज को स्वावलंबी बनाना है तथा अर्थनीति में परिवर्तन की जरूरत है । भ्रष्टाचर मुक्ति और आदर्श का निर्माण किए बगैर समाज को सुखी बनाना असंभव है । भ्रष्ट समाज को दंड़ देने के बजाय उन्हें सुधारने का मौका देकर विद्यालंकार जी उनके ह्दयपरितर्वन की आशा करते हैं ।उनका यह मानवतावादी तथा गांधीवादी दृष्टिकोन "न्याय की रात " की भूमिका में स्पष्ट हुआ है ।

4.10 सामाजिक संस्कृति , सभ्यता और कला की अभिव्यक्ति

हिंदी के अनेक नाटकों में भारतीय समाज के सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति हुई है/ विद्यालंकार जी ने अपने नाटकों में संस्कृति के विविध तत्त्वों और कला रूपों को स्पष्ट किया है ।

भारतीय संस्कृति में दया, क्षमा शांति, ममता, स्नेहवत्सलता, उदारता , त्यागमयता, परोपकारिता आदि भावों का अनन्यसाधारण महत्त्व है । इन सभी सांस्कृतिक भावों की सफल अभिव्यक्ति विद्यालंकार जी ने अपने नाटकों मे की है । जिस देश, समाज का सांस्कृतिक धरातल बहुत

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार –न्याय की रात, पृष्ठ – 76 ।

ऊँचा उठा हुआ है उसे ही श्रेष्ठत्व प्राप्त होता है । तात्पर्य यह कि किसी भी देश की प्रतिष्ठा उसकी सभ्यता , संस्कृति पर निर्भर है । इसतरह के अपने विचार विद्यालंकार जी "रेवा " नाटक में आचार्य पुण्ड़रीक के जरिए व्यक्त करते हैं " विदेशों में केवल अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता के आधारपर ही कोई देश अपना प्रभाव बढ़ा सकता है ।"[1]

नम्र-विनम्रशील को स्नेह और क्षमा तथा अन्यायी-अत्याचारियों को कठोरतम् दंड़ इस भारतीय सांस्कृतिक परम्परागत मानदंड़ को चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी ने " रेवा " नाटक के ऋषि पुण्ड़रीक के आचार-विचार और व्यवहार द्वारा प्रकट किया है । आचार्य ऋषि पुण्ड़रीक के शब्दों में " मैं मानता हूँ कि साधारण दशाओं में लड़ना-भिड़ना अच्छी चीज नहीं है परंतु ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है जब शान्त रहना और अत्याचार सहना संसार का निकृष्टतम पाप बन जाता है और शस्त्र लेकर आततायी का विध्वंस कर देना महान पुण्य का कारण हो जाता है ।"[2] सामान्य स्थिति में लड़ना बेकार है मगर अन्याय के खिलाफ शस्त्र उठाना बहुत जरूरी है यह संस्कृति का विधान है । भारतीय समाज की आर्य-संस्कृति का उल्लेख विद्यालंकार जी के " रेवा " नाटक में आया है ।आचार्य पुण्ड़रीक जनार्दन को आर्य संस्कृति समझाते हैं उनके ही शब्दों में " यह लाल झंडा मेरा नहीं है जनार्दन ।वह मेरे महान देश का भी नहीं है वह तो मनुष्यत्व का, शांति का और भातृभाव का झंडा है।आर्यत्व की इस पताका का आधारभूत सिद्धांत यह है कि उसे किसी देश पर जबरदस्ती नहीं फहराना चाहिए इस पताका का आधार तो हृदय की विजय है ।"[3]

आर्य संस्कृति में मनुष्यत्व, शांति, भातृभाव , सहृदयता महत्त्वपूर्ण गुण है । इसी सांस्कृतिक गुणों को विद्यालंकार जी हमारे सामने पेश करते हैं क्योंकि आज का मनुष्य विवेकी बनने की अपेक्षा अविवेकी, असभ्य बनता चला आ रहा है । नई सभ्यता में वासना, भोगवृत्ति ,विलास को प्रमुख स्थान मिला है इसी कारण मनुष्य-मनुष्य नहीं रहा पशु बनता जा रहा है । इसी संवेदना को विद्यालंकार जी " रेवा " नाटक के चोलराज के जरिए प्रकट करते हैं । उनके शब्दों में " मैं सोचता हूँ कि

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - रेवा, पृष्ठ - 33 ।

2 वही, पृष्ठ - 45 ।

3 वही, पृष्ठ - 47 ।

सभ्यता के शिखर पर पहुँचकर भी हमारे राष्ट्र की जिन आधारभूत दुर्बलताओं ने हमें निर्बल बना दिया, उन निर्बलताओं की ओर हम लोगों का ध्यान क्यों नहीं जाता ? "[1] ये वे दुर्बलताएँ हैं कि जिनके कारण हम मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना नहीं चाहते । उसे किसी सिद्धांत ,तत्वज्ञान और नियम के कटघरे में देखते हैं । उनका यहाँ इतना ही संकेत है कि उच्च सांस्कृतिक धरातल के बगैर देश कितना भी सामर्थ्यशाली क्यों न बने, संपूर्ण समाज में जीवन और शक्ति का संचार करना असंभव है "रेवा " नाटक में विद्यालंकार जी ने भारतीय सांस्कृतिक और कलागत श्रेष्ठता तथा देशविदेश में उनके व्यापक प्रचार–प्रसार का दृष्टिकोण रखा है ।

नारी और बुजुर्गों के प्रति आदर भारतीय संस्कृति में वैशिष्ट्यपूर्ण है । इसी विशेषता का पालन "अशोक " नाटक के सेनापति मौखरी द्वारा किया गया है । अपने सैनिकों को दिए गये आदेश में यह विशेषता पायी जाती है ।एक सैनिक के शब्दों में "तीसरा सैनिक – (अपने साथियों से) सेनापति मौखरी की आज्ञा है कि जहाँ तक हो सके बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ों पर अत्याचार मत करो।"[2] संस्कृति की महत्ता इसी में है कि आततायी भी उसका उल्लंघन करने में सोच विचार करे । इसी में संस्कृति की भारी विजय तथा श्रेष्ठता दिखाई पड़ती है ।

भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य सभ्यता का बुरा प्रभाव पड़ा है। हिंसा ,अपहरण और हत्या में थ्रिल का अनुभव करनेवाली पाश्चात्य सभ्यता ने भारतीय जनमानस पर बुरा असर डाला है ।इसीकारण आज स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी भयानक हत्याकांड हो रहे हैं । "न्याय की रात " में गुजराँवाले हत्याकांड में कमला के माता–पिता की हत्या उनकी आँखों के सामने की गई थी । हेमंत तो पाश्चात्य सभ्यता काप्रतिनिधिक पात्र है ।वह पाखण्डी ,भ्रष्ट ,शराबी और अत्याचारी है । उनके शब्दों में " मैं शक्ति का पुजारी हूँ । यह दुनिया कमजोरों के लिए नहीं है ।दया ,ममता,करूणा इन सबको मैं कमजोरी मानता हूँ । शक्ति की स्थिति,प्रमाण और निरन्तरता के लिए मैं हिंसा और अपहरण को अपरिहार्य मानता हूँ ।"[3]

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार –रेवा, पृष्ठ – 29 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – अशोक, पृष्ठ – 107 ।

3 चंद्रगुप्त विद्यालंकार –न्याय की रात , पृष्ठ – 90 ।

हेमंत के आचार विचार और व्यवहार भारतीय सभ्यता के पूर्णतः प्रतिकूल हैं । उनकी यह सभ्यता दिखावे की सभ्यता है, छल कपट और षड़यंत्र की सभ्यता है । वह संवेदनाहीन सभ्यता का समर्थन करते हुए कहता है " अगर सिकन्दर भावुक होता तो इतना बड़ा साम्राज्य न बना पाता, अगर नेपोलिन दया-माया का शिकार होता तो मास्को तक न पहुँच पाता ।"[1] संवदेनाहीन संस्कृति के समर्थक हेमंत जैसे लोग दया तथा करूणा को कमजोरी मानकर शराबखोरी, भोगीवृत्ति, छल और कपट ने इनकी नयी सभ्यता में गौरव और प्रतिष्ठा का स्थान पा लिया है । भारतीय सांस्कृतिक तत्त्वों को नई सभ्यता के प्रभाव के कारण परिवर्तित करनेवाले हेमंत जैसे लोग समाज को बहकाकर गलत राह पर ले जा रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप जीवन के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदल चुका है। लागों ने जीवन में भोगीवृत्ति, हिंसकवृत्ति, स्वार्थीवृत्ति को स्थान दिया है । स्वातंत्र्योत्तर भारतीय लोगों के बदले हुए दृष्टिकोण के प्रति गहरी संवेदना प्रकट करते हुए विद्यालंकार जी – न्याय की रात " की भूमिका में भी उसे प्रस्तुत करते हैं ।

आजकल बदलते जीवन मूल्य तथा परिवर्तित चेतना की लहर से व्यक्ति की संवेदना में काफी बदलाव आ गया है ।इसका कारण यह है कि समाज के पारम्पारिक नैतिक व्यवस्था के (चाहे सांस्कृतिक , सामाजिक या राजकीय व्यवस्था हो) खिलाफ मनुष्य निरंतर लड़ता आ रहा है । इसके परिणाम स्वरूप सामाजिक सभी व्यवस्था में अनैतिकता और असभ्यता को पर्याप्त स्थान मिला । सामाजिक जीवन में अपनत्व की भावना तकरीबन नष्ट हो गई है जो देश और समाज के लिए घातक साबित हो रही है । नाटककार विद्यालंकार जी के नाटक इसी यथार्थबोध को संवेदनात्मक स्तर पर अनुभूति करानेवाले हैं तथा ये नाटक समाज में ऐसे व्यक्ति की प्रतिष्ठापना करना चाहते हैं जो सामाजिक कुटिलताओं ,विद्रुपताओं, जर्जर और कलुषित परम्पराओं और अनैतिकताके खिलाफ विद्रोह कर स्वस्थ और सभ्य सामाजिक व्यवस्था का निर्माण कर सके तथा असंवेदनशील समाज में संवेदना की धारा बहा सके,क्योंकि संवेदना ही स्वस्थ मानव समाज की रीढ़ होती है ।

विद्यालंकार जी का " रेवा " नाटक भारतीय संस्कृति ,सभ्यता, कला और शिल्प के विदेशों में प्रचार-प्रसार और विस्तार की कहानी है । " रेवा " के मकरंद ,गोविंद तथा इन्दिरा आदि

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार –न्याय की रात , पृष्ठ – 96 ।

भारतीय संस्कृति के प्रतीक चरित्र हैं ।गोविंद विश्वप्रसिद्ध महाशिल्पी है जो काम्बोज की भवन निर्माण करने की श्रेष्ठ सामग्री का प्रयोग कर भवन निर्माण कला में नए परीक्षण एवं संशोधन करता है ।वह कान्बोज में भव्य शिवमन्दिर का निर्माण करता है। कला प्रेमी इन्दिरा निराश मन के आचार्य पुण्ड़रीक जी को प्राचीन मन्दिर भवन दिखाती है जिसके कारण आचार्य पुण्ड़रीक के मन को राहत मिलती है । वे प्रसन्नचित्त होकर शिल्प निर्माण विद्या के इस चमत्कार को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं और शिल्पी गोविंदद्वारा निर्मित शिवमन्दिर की मनःपूर्वक स्तुति करते हैं । वे प्रसन्नचित्त से कला प्रेमी सम्राट यशोवर्मा से कहते हैं "यशोवर्मा मुझे तो यहाँ तक विश्वास है कि हजार वर्षों के बाद यदि कभी काम्बोज की किर्तिगाथा पृथ्वीतल के निवासी भूल भी जाए और विश्व पर से काम्बोज का नाम भी लुप्त हो जाए तो भी शिल्पी गोविंदद्वारा अंगकोरवाट में निर्मित यह शिवमन्दिर संसार को तुम्हारे वंश और तुम्हारे द्वीप की किर्तिगाथा का परिचय देता रहगा ।"[1]

संस्कृति ,कला तथा शिल्प मनुष्य के जीवन में एक नया रंग भर देता है । कला,शिल्प और संस्कृति चिरंतन काल तक रहती है । परंतु उसका रक्षण तथा उससे प्रेम करना जरूरी है तभी वह अबाधित रह सकती है और उसका विकास हो सकता है । विद्यालंकार जी कला, सभ्यता और संस्कृति के रक्षणार्थ आदर्श महामानव की आवश्यकता बताते हुए समाज में आदर्शवृत्ति प्रतिष्ठापित करना चाहते हैं।उनके अधिकांश पात्र आदर्शवादी दिखाई देते हैं ।" रेवा " नाटक के आचार्य पुण्ड़रीक संस्कृतिप्रेमी, यशोवर्मा वीर, कल्याणकारी तथा कलाप्रेमी और इन्दिरा संस्कृति प्रचारक प्रसारक तथा कलाप्रेमी तो " अशोक " नाटक के आचार्य उपगुप्त महान समाज सेवक ,शीला कर्तव्यदक्ष, त्यागी और "न्याय की रात " नाटक के राजीव ईमानदार, जुगलकिशोर सुशिक्षित सभ्य और देशप्रेमी हैं । ये सभी आदर्शवादी पात्र नजर आते हैं ।ये अपनी अलग छाप पाठकों पर छोड़ जाते हैं। इन आदर्शवादी पात्रों के जरिए विद्यालंकार जी ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रयत्न किया है ।

4.11 सामाजिक राजनीति की अभिव्यंजना

समाज जीवन का हर क्षेत्र किसी न किसी कारणवश राजनीति से प्रभावित रहता है । आज कल सामाजिक जीवन पूर्णतः राजनीति का शिकार बन गया है। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्र धर्म, विज्ञान, शिक्षा और संस्कृति पूर्णतः राजनीति के जाल में है ।चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी ने राजनीतिक

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार –रेवा, पृष्ठ– 156 ।

नियम और आदर्श की अभिव्यक्ति अपने नाट्यसाहित्य में की है । राजा तथा नेता के कर्तव्य, अधिकार, युद्धनीति और राज्य संचालक के नियम आदि का विवेचन उनके नाटकों में मिलता है । इसके साथ ही उनमें न्यायसंस्था , लोकतंत्र, मंत्री तथा उनके सहकारियों के व्यवहार , पुलिस और सैन्याधिकारियों के उत्तरदायित्व तथा राष्ट्रीयता के तत्वों को भी रूपायित किया है ।

"अशोक " और " रेवा " नाटक में राज्य स्थापना , उनका संचालन और विस्तार तथा राजा के कर्तव्यों की व्याख्या की है । नाटककार विद्यालंकार जी मानते हैं कि राज्यसंचालन के साथ-साथ राज्य विस्तार , एक साम्राज्य की स्थापना करना भी राजा का प्रमुख कर्तव्य है । यशोवर्मा के शब्दों में " मेरी दृष्टि मेंराज्य संचालन से भी बढ़कर मेरा कर्तव्य है राज्य का विस्तार, एक साम्राज्य की स्थापना । मैं वही काम करूँगा ।"[1] राजा के इस कर्तव्य के साथ उसे अपनी व्यक्तिगत चाह, इच्छा अनिच्छा से भी बढ़कर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए । क्योंकि सामाजिक तथा राजकीय कर्तव्य जी की चाह से ऊपर की चीज है ।" रेवा " नाटक में राजकुमारी रेवा और यशोवर्मा के संवाद यहाँ द्रष्टव्य है --

"रेवा"- देखो राजकुमार , मैं आशाद्वीप की रानी हूँ और इस तरह अपनी संपूर्ण प्रजा की माता हूँ मैं नहीं चाहती कि अपनी किसी भी व्यक्तिगत इच्छा या स्वार्थ के लिए मैं अपनी प्रजा के चित्त को कष्ट पहुँचाऊँ ।

यशोवर्मा - मैं तुम्हारी बात नहीं समझा राजकुमारी ।

रेवा - मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ चाहे कुछ भी हो, परंतु मैं करूँगी वही, जो मेरी प्रजा चाहेगी ।"[2]

नाटककार का कहना यह है कि राजा का व्यक्तिगत स्वार्थ चाहे कुछ भी हो परंतु उसे वही करना चाहिए जो उसकी प्रजा चाहेगी । राजा को वही करना चाहिए जिससे प्रजा का कल्याण होता हो उसे व्यक्तिगत इच्छा या स्वार्थ की खातिर प्रजा को दुःखी नहीं करना चाहिए । राजा प्रजा का माता-पिता होता है उसे प्रजा का लालन-पालन अपने बच्चो जैसा करना चाहिए । मतलब प्रजा के प्रति राजा को (शासक को) पुत्रवत प्रेम करना चाहिए । राजा या शासक के इसी कर्तव्य, व्यवहार की ओर नाटककारने संकेत किया है ।

विद्यालंकार जी के अधिकांश नाटकों के कथानक प्रमुखता से सुप्रसिद्ध साम्राज्य से संबंधित हैं । इसीकारण उन्होंने अपने नाटकों में राज्य के नियम, राजा (शासक) के कर्तव्य, नीति-अनीति तथा

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - रेवा, पृष्ठ - 35 ।
2 वही, पृष्ठ- 110 ।

शास्त्रास्त्र संबंधीबातों पर सविस्तर विचार-विमर्श किया है । वे " रेवा " नाटक के जरिए कहना चाहते हैं कि शस्त्रबल का प्रयोग उसी जगह करना आवश्यक है जहाँ उन्नति में बाधा उत्पन्न हो । " अशोक " नाटक में उन्होंने न्यायव्यवस्था के अभाव में राज्य का अस्तित्व खतरे में पड़ जाने की संभावना व्यक्त की है । इसमें अन्यायी सेनापति चण्ड़गिरी के शासन को जनता विद्रोह कर समाप्त करना चाहती हैं । जब स्वाधीनता पर प्रहार होने लगेगा तब बगावत करके अन्याय, अत्याचार और पाप की जड़े उखाड़कर फेंक देने का संकेत तथा जनता की सम्मिलित ताकत का परिचय विद्यालंकार जी इस नाटक में देते हैं तक्षशिला की जनता अत्याचारी चण्ड़गिरी का शासन कदापि सहन नहीं करती । वह उसे उखाड़ने के लिए मर मिटने को तैयार है । तक्षशिला के विद्रोही नेता के शब्दों में –" हम लोग यदि आपस में मिलकर रहेंगे , संगठित रहेंगे , तो सम्राट की भाड़े की सेना हमारी मातृभूमि की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं कर सकेगी । तक्षशिला की स्वाधीनता अमर रहेगी ।"[1] यहाँ संगठन की , एकता की ताकत और देशप्रेम भी प्रकट हुआ है तथा अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने का संकेत प्राप्त है ।

राज्य पर असल में जनता का ही अधिकर है । राज्य किसी एक व्यक्ति का नहीं, सुशासन का होता हे । सामाजिक सुव्यवस्था के निर्माणार्थ ही राज्य की निर्मिती हुई है । अगर जनता पर अन्याय , अत्याचार की हद हो गई और जनता क्रुद्ध हुई तो अन्यायी शासन की जड़े पाताल से हिलने लगती हैं । उससे कोई बच नहीं सकता यह संकेत विद्यालंकार जी हमें "अशोक " नाटक के जरिए देते हैं ।

शूरता और वीरता के साथ ही नीति–अनीति पर ध्यान रखना भी राजनीति में अनिवार्य है । नैतिकता की उपेक्षा करने के कारण समाज में राज्याधिकारी का चारित्र्यहनन हो जाता है । वह राज्य की जनता में चिंता और अनर्थ का विषय बन जाता है । स्वार्थसिद्धि के लिए धोखा देना राजनीति में अधर्म या अनीति है । " अशोक " नाटक में स्वार्थी और अहंकारी अशोक अधर्म तथा अनीति से पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर बड़े भाई युवराज सुमन की भारी षड़यंत्र से हत्या कर देता है । अशोक के शब्दों में " इस दुनिया में सिर्फ कुछ समय पहले आ जाने के कारण सुमन तो सम्राट बन जाए और मैं राज्यसंचालन की योग्यता में उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक निपुण होते हुए भी सारी उम्र उसकी नौकरी बजाऊँ यह मुझसे सहन न होगा ।"[2] सम्राट बनने की लालसा में बड़े भाई की हत्या करवाकर

---

1 चंद्रगंप्त विद्यालंकार –अशोक, पृष्ठ – 11 ।

2 वही, पृष्ठ – 43 ।

स्वयं सम्राट बना अशोक अधर्मी, अन्यायी है । षड़यंत्र से सत्ता हस्तगत करके भी जनता उसे कभी स्वीकार नहीं करती । एक व्यक्ति की प्रतिक्रिया स्वयं उसके शब्दों में देखिए –"हम अत्याचारि अशोक को कभी अपना सम्राट नहीं मान सकते ।"[1] इसका अर्थ यह है कि जनता पर हुकूमत नहीं चलती, सुशासन चलाने वाले को जनता को चाहती है । जनता साम्राज्य की दास नहीं , नागरिक है । वह पशु नहीं कि उस पर जो जैसा चाहे शासन करे । राज्यसत्ता की अपेक्षा जनसत्ता श्रेष्ठ है। नाटककार ने इसी नाटक में समयानुकूल विद्रोह के लाभ की ओर संकेत किया है । जब रज्य की शासनव्यवस्था में गड़बड़ी , हो–हल्ला, अन्याय, अत्याचार, अंधाधुंदी मच जाती है तब समय विशेष की मॉंग को लेकर शासन व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह का झंड़ा खड़ा कर देना जरूरी है, यही नुकसानी से बचने और लाभ पाने का सही तरीका भी है उदाहरण के तौर पर तक्षशिला का विद्रोह हो या रूसी राज्यक्रांति, तात्पर्य यह कि समय और अवसर विशेष में बगावत करना, क्रांति करना अनुचित नहीं बल्कि वह समय की मॉंग होती है ।

विद्यालंकार जी ने " अशोक " और " रेवा " के जरिए सुशासन की आवश्यकता पर बल दिया है । " अशोक " नाटक में प्रारंभिक अवस्था में शासनयंत्रणा युद्ध के कारण अव्यवस्थित थी मगर कलिंग युद्ध के बाद अशोक के हृदयपरिवर्तन के कारण शासनयंत्रणा में अमूलाग्र परिवर्तन आता है । अशोक पूरे साम्राज्य में सुशासन प्रस्थापित कर देता है । " रेवा " में सम्राट यशोवर्मा तथा नाशाद्वीप की महारानी रेवा के सुशासन का उल्लेख है । रेवा तो आजन्म अविवाहित रहकर प्रजा की सेवा करती है ।

चंद्रगुप्त विद्यलंकार जी ने अपने नाटकों में स्वस्थ समाज हेतु राजधर्म को स्पष्ट किया है । अन्याय के विरूद्ध कड़ा मुकाबला करके उसका दमन , दलन करना राजमर्ध का प्रथम कर्तव्य है । युद्ध के संबंध में शस्त्रास्त्र का प्रयोग शत्रु के घमंड़ को परास्त करने तथा उनका मुकाबला करने के लिए ही हो । उसका गलत इस्तेमाल अनुचित है । अग्निचुर्ण (बारूद, गोलाबारूद) के प्रयोग के प्रति नाटककार गहरी चिंता प्रकट करते हैं । एक नागरिक का दूसरे से अग्निचुर्ण के बारे में किया गया वक्तव्य यहॉं द्रष्टव्य हैं " परंतु भाई यदि सभी लोग इसी प्रकार अग्नि पर विजय स्थापित कर लें तो संसार में जीवित रहना भी कठिन हो जाएगा ।"[2] मतलब जरा–सी किसी के साथ छेड़छाड़ हुई नहीं कि

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – अशोक , पृष्ठ – 60 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ – 123 ।

झटसे उसे अग्निचुर्ण (गोलाबारूद) के इस्तेमाल से भस्मसात किया जाए , यह बड़ी चिंताजनक स्थिति है । फिर भी शत्रु को डरा–धमकाने हेतु वे शस्त्रास्त्र निर्मिति की जरूरत बताते हैं ।

समाज एकसंघ और शक्तिशाली होगा तभी वह विदेशी आक्रमण से देश को बचा सकता है । देश को समृद्ध और शक्तिशाली बनाने के हेतु व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय एकता स्थापित करने की आवश्यकता विद्यालंकार जी " रेवा " नाटक में स्पष्ट कर देते हैं । काम्बोज और चम्पा में यदि धनिष्ट मित्रता का भाव पैदा हो सके तो दोनों राष्ट्रों की सम्मिलित शक्ति विश्वभर के लिए चर्चा का विषय बन जाएगी । मेरे जीवन का स्वप्न भी यही है ,ऐसा संदेश आचार्य पुण्ड़रीक चम्पा पर आक्रमण करने के लिए चले यशोवर्मा को दे देते हैं ।आचार्य पुण्ड़रीक के द्वारा विद्यालंकार जी कहना चाहते हैं कि जहाँ तक हो सके युद्ध को प्रश्रय नहीं देना चाहिए । एकता, विश्वबंधुता और भातृभाव समाज , देश में पैदा करना जरूरी है । वह देश के लिए, समाज के लिए तथा विश्वशांति के लिए हितकारक है । युद्ध तथा शत्रुता की वजह से समाज तथा देश का निर्माणकार्य अवरूद्ध हो जाता है ।

राजनीति में जनता का महत्त्व अनन्यसाधारण है क्योंकि राजनीति मे जनता रीढ़ की हड्ड़ी है ।वहीकिसी भीशासनप्रणाली का प्रमुख आधारस्तंभ है, वही शासनयंत्रणा में मुख्य है । जनता के बगैर शासन का महत्त्व शून्य है इसी कारण उसी को नकारने तथा उसकी भारी उपेक्षा करने के परिणामस्वरूप शासकों को भयंकर और कठिन परिणामों का सामना करना पड़ा है । इसीबात की संभावना को मध्यनजर रखते हुए " अशोक " नाटक का अनुभवी राजनीतिनिपूण सेनापति चण्ड़गिरी अपने स्वामी से (सम्राट अशोक से) कहता है " आपका शायद अभी तक क्रुद्ध जनता से वास्ता नहीं पड़ा महाराज । मुझे तक्षशिला का अनुभव है जनता का क्रोध बिल्कूल अंधा होता है हुजूर ।"[1] नाटककार यहाँ जनता की उपेक्षा राजा अथवा शासनकर्ता के लिए बहुत मँहगी सिद्ध होती है इस बात का संकेत देते हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक, राजकीय और आर्थिक जीवन में काफी परिवर्तन आ गया । अंग्रेजी" क्लर्क उत्पादन " शिक्षा व्यवस्था के परिणामस्वरूप धनलोलूप , स्वार्थी और आलसी मध्यवर्गीय समाज का निर्माण हुआ । इसके पीछे अँग्रेज सरकार की चाल थी क्योंकि जिस वजह से उन्होंने सरकारी क्लर्क और कर्मचारियों को जानबुझकर हास्यास्पद न्यूनतम तनख्वाह पर काम पर रखा था । उद्देश्य यह था कि उनकी प्रवृत्ति आर्थिक कमी की वजह से भ्रष्टाचार और शोषण की ओर बढ़ती जाए

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार –अशोक , पृष्ठ – 62 ।

और समाजव्यवस्था डॉवाडोल हो इस बात को विद्यालंकार जी अपने नाटक " न्याय की रात " की भूमिका में स्पष्ट कर देते हैं । अंग्रेजों की इस चाल और कुटिल राजनीति ने भारतीय समाज व्यवस्था को पंगु कर देने का काम किया । फलतः आज भारतीय समाज भ्रष्टाचार, बेईमानी , शोषण और बेकारी का शिकार बन गया है । भारतीय समाज की मानसिक स्थिति आज इतनी चिंताजनक बन गई है कि हेमंत और सदानंद जैसे लोग देश को बेचने के लिए तैयार हैं किन्तु उसे बेचकर अपना पेट भरने की वृत्ति पूरे समाज में फैली है । मतलब लूटो और खाओ" आज के भारतीय समाज का दृष्टिकोण है । "न्याय की रात " में लेखक ने ऐसे लोगों की तथा समाज में फैले भ्रष्टाचार को जड़े उखाड़ने हेतु राजीव जैसे ईमानदार , जुगलकिशोर जैसे सुशिक्षित देशप्रेमी युवा लोगों की हिंदुस्तान के लिए आवश्यकता बतायी है ।

"न्याय की रात " के अमरसिंह जैसे देशद्रोही पुलिस अफसर भी हेमंत जैसे पाखण्डी नेता लोगों के साथ मिले हुए हैं ।सरकारी अफसर , बड़े-बड़े व्यापारी, पाखण्डी नेता मिलकर भ्रष्टाचार से काले पैसों का हिमनग खड़ा कर देते हैं । पुलिसवालों को पैसों की मदद से कब्जे में लेकर उनकी मदद से गुण्ड़ो ,मवाली पालकर धन तथा रूपये वसूल लेते हैं यह वास्तविकता है । नेता, सरकारी अफसर, व्यापारी ही जनता को लूट रहे हैं । इसका प्रमुख कारण यह है कि शासवव्यवस्थ और उसकी यंत्रणाशक्ति अपना धाक जनमानस पर और सरकारी अधिकारियोंपर नहीं जमा पा रही है । इन भ्रष्ट नेता तथा अफसर लोगों से जनता क्या आदर्श लेती रहेगी ? वह भी उनका अनुकरण करने लगी है अर्थात जनता भी टैक्स बचाती रहती है । लोग वोट बेचकर खाते हैं और नेता देश को बेचकर ,यह आज की राजनीतिक ,सामाजिक स्थिति है। इससे देश और समाज को बाहर निकालने के लिए विद्यालंकार जी " न्याय की रात " नाटक के नए संस्करण की भूमिका में लिखते हैं " इन परिस्थितियों में ,मेरी राय से और भी अधिक आवश्यक है कि सरकारी मशीनरी के कलपुर्जे पूरी तरह निर्दोष हों । जिस देश को कोई बड़ा काम करना हो, अथवा जब कोई देश विषम परिस्थितियों में से गुजर रहा हो,तो उसका शासनतंत्र अत्यंत मजबूत होना चाहिए ।"[1]

शासनतंत्र के मजबूती के साथ ही जनता की मानसिक प्रवृत्ति को, जो विकृत अंश में

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार –न्याय की रात, पृष्ठ – 7 ।

परिवर्तित हुई है, मूल स्थिति पर लाना जरूरी है । मतलब उनमें हृदय परिवर्तन की जरूरत है । इसीसंवेदना से विद्यालंकार जी ने " अशोक " नाटक में हिंसक सम्राट अशोक का हृदय परिवर्तन अहिंसा में परित्रर्तित करके दिखाया है जिसका प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है । क्योंकि यह एक साधारण आदमी का नहीं, सम्राट का हृदय परिवर्तन था इसका असर बहुत व्यापक मात्रा में रहा । इसलिए वे मानते हैं कि आदर्शवाद का भी प्रभाव भारतीय समाज पर जरूर पड़ेगा मगर इसके लिए महात्मा गांधी जैसे महान आदर्शवादी महामानव की आज जरूरत है ।"न्याय की रात " नाटक के भ्रष्ट देशद्रोही सरकारी अफसर सदानंद का भी हृदय परिवर्तन उन्होंने कर दिखाया है । पहले-पहल अनैतिकता, बेईमानी का साथ देनेवाला सदानंद आदर्शवादी कमला के संसर्ग से पूर्ण रूप से बदल जाता है, सुधर जाता है । तात्पर्य यह कि वह नैतिकता और ईमानदारी के मूल पथ पर आ जाता है । निष्कर्ष यह कि विवेच्य नाटकों में सामाजिक , राजनीतिक अभिव्यंजना अनेक स्थानों पर परिलक्षित होती है ।

निष्कर्ष

चंद्रगुप्त विद्यालकार जी के पास संवेदनशील करूणाद्रवित हृदय था । उनमें सुक्ष्म निरीक्षण की क्षमता थी । उन्होंने समाज के सुख-दु:ख की तीव्र अनुभूति को ग्रहण किया था । नाटककार विद्यालंकार जी ने सामाजिक यथार्थ को संवेदनात्मक स्तर पर पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त किया है ।

उन्होंने " अशोक " और " रेवा " नाटक में भारतीय संस्कृति और उसकी श्रेष्ठता , धर्म, आचार-विचार, नीति-अनीति, मित्र-शत्रुता आदि सामाजिक बातों को स्पष्ट कर दिया है । राज्य और राज्यसंचालन की तकनीक , शासकों के कर्तव्य , युद्‌ध के प्रति एक अलग दृष्टिकोण आदि बातों को सही ढंग से प्रस्तुत कर दिया है । विद्यालंकार जी के नाटक मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने-परखने और व्यवहार करने तथा मनुष्य को आदर्श नागरिक बनाने, मनुष्य में सामाजिक आदर्श के रूपों की सत्य, अहिंसा, परोपकारी , सेवा, तथा त्याग की भावना आदि को जगाने का बोध हमें दे देते हैं ।

"न्याय की रात " नाटक में उन्होंने समाज में प्रवेश कर चुके भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता , शोषण की प्रवृत्ति आदि का यथार्थ चित्रण किया है । वे कुछ ईमानदार , सुशिक्षित और सभ्य पात्रों का

आदर्श प्रस्थापित कर देते हैं । हृदय परिवर्तन की भावना पर विश्वास कर नाटककार आशा की एक नई किरण दिखाता है और सुखद भविष्य की ओर संकेत करता है ।

विद्यालंकार जी के नाटक यथार्थ बोध को संवेदनात्मक स्तर पर अनुभूति करानेवाले नाटक हैं । ये नाटक समाज में ऐसे व्यक्ति की प्रतिष्ठापना करना चाहते हैं जो सामाजिक विद्रूपताओं, संड़ाधताओं , बर्बरताओं, जटिलताओं , बेईमानी तथा अनैतिकता के प्रति बगावत करके स्वस्थ और मजबुत सामाजिक व्यवस्था का निर्माण कर सकें । उन्होंने अपने नाटकों में व्यक्ति को केन्द्र में रखकर समाज की रूपरेखा तैयार कर यथार्थ को आधार बनाते हुए आदर्श का निर्माण किया । उन्होंने मनुष्यत्व को महत्त्व दिया तथा सामाजिक अन्याय और अत्याचार का विरोध करने में सक्षम नाट्यसाहित्य का सृजन किया । विद्यालंकार जी ने समाज की समस्त अच्छाई–बुराई ,अनेक समस्याओं को अपनी खुली आँखों से देखा था और उन्हें ही अपने साहित्य में रूपायित करनेमें वे सफल हुए हैं ।

विद्यालंकार जी अपने नाटकों के माध्यम से मानवी व्यवहार पर नियंत्रण रखने हेतु शासनयंत्रणा मजबूत करने, समाज में फैली भ्रष्टाचार वृत्ति, अमानवीयता तथा हिंसा की प्रवृत्ति को बदलने की संवदेना प्रकट करते हैं । उनकी महत्लक्ष्य पूर्ति की महत् संवेदना मानव कल्याण के लिए उपयोगी और समाज में महान आदर्श भर देती है तथा मानव जीवन को स्वर्णिम भविष्य की ओर ले जाती है ।

सामाजिक जीवन के चतुशाश्रम व्यवस्था में से तीनों आश्रमों का विद्यालंकार जी समर्थन करते हैं । अर्थात ब्रह्मचर्याश्रम , गृहस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम का उन्होंने कुछ स्थानों पर विवेचन किया है ।जातिप्रथा , प्रांतीयता और भाषावाद जैसी बातें देश और समाज की एकता में तथा प्रगति में बाधा डालते हैं इसका संकेत विद्यालंकार जी के नाटकों में दृष्टिगोचर होता है । सामाजिक उत्थान एवं सांस्कृतिक संवर्धन के लिए उन्होंने सामाजिक आदर्श के विभिन्न पहलुओं की अर्थात माता–पिता का आदर्श ,भाई–बहन का आदर्श,स्वामी–सेवक का आदर्श, अहिंसा ,त्याग ,सेवाभाव , परोपकार, नैतिकता और ईमानदारी आदि का आवश्यकता एवं अनिवार्यता प्रतिपादित की है ।

विवेच्य नाटकों में नाटककार की अपने समाज के प्रति धार्मिक एवं सांस्कृतिक संवेदना स्थान–स्थान पर पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित होती है । विवेच्य नाटकों में धार्मिक मूलभूत सिद्धांत, आस्था, समाज की अर्थविषयक दृष्टि एवं स्थिति और बेरोजगारी जैसी प्रवृत्तियों का खुलकर चित्रण हुआ है । नाटककारने अपने नाटकों में सामाजिक संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए आदर्शवादी

पात्रों का निर्माण किया है और इन पात्रों के जरिए सांस्कृतिक पुनर्जागरण का एक अभियान शुरू किया है । विद्यालंकार जी कलाप्रेमी हैं और मानते हैं कि संस्कृति ,कला और शिल्प मनुष्य के जीवन में नया रंग भर देते हैं, तथा राष्ट्र को प्रतिष्ठा देते हैं । इसलिए इनका रक्षण एवं संवर्धन होना आवश्यक है । विवेच्य नाटकों में सामाजिक, राजनीतिक अभिव्यंजना अनेक स्थानों पर परिलक्षित होती है । निष्कर्षः सामाजिक संवेदना विद्यालंकार जी के नाटकों का प्राणतत्व है ।